# कर्जदार मोती

(महर्षि शिवव्रतलाल जी महाराज कृत रोमांचकारी, आकर्षक तथा शिक्षाप्रद उपन्यास)

★

सम्पादक—

नन्दू भाई

(निज़ामाबाद, दक्षिण)

★

अ० स० सम्पादक—

देवीचरन मीतल

लेखराज नगर, अलीगढ़

★

प्रकाशक—

नन्दू भाई

शिव साहित्य प्रकाशन मंडल

पो० दयाल नगर, अलीगढ़

सं० २०२५ वि०

सर्वाधिकार सुरक्षित

मूल्य २) प्रति

# विषय सूची


| क्रम संख्या | | विषय | पृष्ठ |
|---|---|---|---|
| प्रथम | प्रकरण | बिछोह | ५ |
| दूसरा | ,, | संकल्प का जगत | १० |
| तीसरा | ,, | दैवी सहायता | १६ |
| चतुर्थ | ,, | योगिनी | २२ |
| पाँचवाँ | ,, | सहेलियाँ | २८ |
| छटवां | ,, | रामसिंह | ३४ |
| सातवां | ,, | मिरनालिनी | ४१ |
| आठवां | ,, | यशोदा | ४८ |
| नवाँ | ,, | मोहनी | ५४ |
| दसवां | ,, | सुजानसिंह | ६२ |
| ग्यारहवां | ,, | वैद्यराज | ६८ |
| बारहवाँ | ,, | मिलाप | ७४ |
| तेरहवां | ,, | मिलाप (लगातार) | ७९ |
| चौदहवां | ,, | तारासिंह | ८४ |
| पन्द्रहवां | ,, | स्वरूपानन्द | ९० |
| सोलहवाँ | ,, | कुड़मधुम | ९४ |
| अठारहवाँ | ,, | विवाह | १०० |
| उन्नीसवां | ,, | बिदाई | १०७ |
| बीसवां | ,, | पूछताछ | ११२ |
| इक्कीसवाँ | ,, | रहस्य | ११९ |
| बाईसवां | ,, | विवाह का प्रसंग | १२५ |
| तेईसवां | ,, | बीमारी | १३२ |
| चौबीसवां | ,, | मृत्यु | १३७ |
| पच्चीसवां | ,, | रहस्य का हल | १४२ |
| छब्बीसवां | ,, | परिपूरक | १४८ |

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देव महेश्वरः ।
गुरु साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्री गुरुवे नमः ॥

# शब्द

भक्ति की शक्ति मिली, और शक्ति वाली हो गई ।
शक्ति वाली सहज में अब, भक्ति वाली हो गई ॥ १ ॥
किसकी मुक्ति किसका बंधन, खेल दोनों मन में हैं ।
जो नहीं उसको समझते, जान लो उलझन में हैं ॥ २ ॥
मौज में रहती है दासी, नाम जपती है सदा ।
नाम में बिसराम सुख, और शान्ति है सर्वदा ॥ ३ ॥
सोते बैठे जागते, होठों पर गुरु का नाम है ।
चाहे जैसे हो अवस्था, नाम ही से काम है ॥ ४ ॥
सतगुरू की दया से, घट में गुरु दर्शन मिला ।
अब नहीं दासी को चिन्ता, नाम धन जब पा लिया ॥ ५ ॥

# भूमिका

इस नाविल की कहानी नई नहीं है। हां रंग ढंग, वर्णन शैली, भाषा, वार्तालाप अवश्य नये हैं। इसकी वर्णन शैली तथा भाषा सरल और आकर्षक तो है ही मगर साथ की साथ कहानी रोमांचकारी और बड़ी शिक्षाप्रद भी है। व्यवहारिक जीवन की अनेक उपयोगी बात मिलेंगी। आकर्षण इतना है कि एक बार थोड़े से पृष्ठ पढ़ लेने के बाद इसे छोड़ने को जी नहीं चाहता। चूंकि नाविलों के पढ़ने का आज कल अधिक प्रचार है और लोग पसंद भी करते हैं अतः लेखक महोदय की अमूल्य शिक्षा भी इसमें समावेश की गई है। यह नाविल महर्षि जी महाराज के उर्दू नाविल के आधार पर हैं। आशा है पाठक जन इसे पसंद करेंगे और इससे लाभ उठायेंगे।

स० सम्पादक

# कर्जदार मोती

## प्रथम प्रकरण

### विछोह

"सुनो ! मैं एक बात कहता हूँ ।"

"कहो, क्या कहते हो ?"

"तुमने तो मेरा विश्वास कर लिया किन्तु मैं विश्वास के योग्य नहीं हूं ।"

"क्यों ?"

"क्योंकि मैं जुआरी हूँ ।"

"कुछ परवाह नहीं । मैं इसे इतना बुरा नहीं समझती ।"

"मैं शराब भी पीता हूँ ।"

"इस बुरी आदत के सहन करने के लिये मैं तैयार हूँ ।"

"तुम्हारी तबीयत बड़ी विचित्र है । लेकिन मैं प्रतिज्ञा बद्ध भी नहीं हूं बात बदल जाता हूँ । मेरी बात का विश्वास कोई नहीं करता ।"

"अच्छा तो फिर मुझे सांडिनी से नीचे उतार दो । तुम मेरा साथ न दे सकोगे । प्रतिज्ञा भंग करने वाले और बचन के पालन न करने वाले के ऐब को कमतर क्षमा करती हूँ ।"

उसने सांडनी को इशारा किया, वह घुटना टेक कर जमीन पर बैठ गई । उस पर दो आदमी सवार थे । एक पुरुष था । दूसरी स्त्री थी । दोनों नीचे उतर पड़े ।

"तुम क्यों उतरते हो ? तुम अपनी राह लो। और मैं जिधर सींग समायेंगे उधर जाऊँगी।"

"तनिक अफीम घोलकर पीलूं। यह रोग मुझे बुरी तरह चिमट गया है। सब कुछ छूट जाय मगर यह आदत नहीं छूटेगी। थोड़ी चुटकी ले लूं। फिर चलता बनूंगा। तब तक तुम्हारा साथ रहेगा।"

यह हँसी—"अच्छा ! यह भी सही।"

दोनों रेत पर बैठ गये। यह सोचने लगी और वह अफीम घोलने लगा।

"तुम क्या करोगी ?"

"अभी तक मैंने कुछ नहीं सोचा।"

"तुम शायद अपने घर वापिस चली जाओगी।"

"हाथी के मुंह से बाहर निकले दांत भीतर नहीं जाते। अब मैं क्या मुंह लेकर अपने मां बाप के घर जाऊँगी। मेरी सूरत देखना कौन चाहेगा !"

"तुम मुझे अपराधी ठहराती हो।"

"नहीं ! दोष मेरे भाग्य का है। मेरे भाग्य ने तुमको अपना औजार बनाया। मैंने पिछले जन्म में कोई बुरा काम किया होगा। यह उसकी सजा है। जो जैसा करता है वैसा फल पाता है। तुम्हारा कोई दोष नहीं है।"

"मुझसे गलती हुई। मैं मानता हूँ। मैंने कुछ सोचा नहीं। तुमको धोका देकर भगा लाया। राह में ख्याल आया। मैं स्वतंत्र नहीं हूँ।"

"अब इन बातों के जुबान से निकालने का समय कहां रहा ! जो होना था वह हो चुका। गलती मैंने की। मैं राजी नहीं होती तो तुम क्या कर सकते थे।"

"तुमने क्यों गलती की ?"

"इसका क्या उत्तर दूं ! तुम्हारी बात का विश्वास किया।

तुम अच्छी सूरत वाले थे। बातों में आगई। न सोचा न समझा घर से बाहर पांव निकाला। अब इस सुनसान, निर्जन और भयानक रेगिस्तान में तुमसे अलग हो रही हूँ। घर से निकली। अब जंगल की भी नहीं रही।"

"क्या करोगी ?"

"जो भाग्य करायेगा वह करूंगी। समय से पहिले क्या कहूँ ! और कहने से लाभ क्या होगा ! जो भाग्य में लिखा था वह होगया और जो और होने वाला है होकर रहेगा। उस पर किसी का वश नहीं है।"

"खेद है।"

"किस पर खेद ! और किसका खेद।"

"मुझ पर या तुम पर। मेरा या तुम्हारा ?"

"दोनों पर और दोनों का।"

"तुम में यह समझ है। फिर बचन भंग क्यों होते हो। अपनी बात का पास करो।"

"यह मुझ से न होगा। मुझ में बुरी आदत पड़ गई है। मेरे दिल के भीतर कोई ऐसा शैतान बैठा हुआ है जो मुझे झूठी बातें कहल-वाता रहता है। यह मुझमें जन्म से ही ऐब है। जन्म से मक्कार और धोखेबाज हूं।"

"तब तो तुमने और कन्याओं की सादगी का भी अनुचित लाभ उठाया होगा।"

"क्यों नहीं ! मैं सिर से पांव तक पाप के बोझ से लदा हुआ हूं। यह अकेली ही घटना नहीं है।"

"इसे समझते हो इसलिये क्षमा की अब भी आशा है। जो आदमी पाप को पाप समझता है वह एक हद तक समझ बूझ से काम लेने वाला है और कभी न कभी अपना सुधार कर लेगा।"

यह हंसा—"मैं कठोर हृदयी होगया।"

"जानता बूझता सब कुछ हूं। जान बूझ कर ऐब करता हूँ।"

"पछताते भी हो।"

"नहीं।"

"इसका अफसोस है।"

"तुमको अफसोस है। मुझे अफसोस भी नहीं है।"

"मुझे तुम पर दया आती है।"

"क्या तुम मुझसे अप्रसन्न हो ?

"नहीं ! और अप्रसन्न होकर क्या करूंगी और इससे लाभ क्या होगा। तुम देखते नहीं ! मेरे माथे पर सलवट तक नहीं है। अपना ख्याल कुछ भी नहीं है। तुम्हारा ख्याल अवश्य है और तुम पर अफसोस है।"

"तुम इस दुनिया की जीवधारी नहीं हो। तुम देवी हो।"

"तब ही तो तुमने एक देवी को उसके मन्दिर से लाकर इस रेतीली भूमि में पटक दिया।"

"देखो ! शिकायत करती हो। अभी तक तो मेरे व्यवहार या दुर्व्यवहार को अपने भाग्य के ऊपर डालती रही हो और अब मुझे अपराधी बनाती हो।"

"सच्चे हृदय से नहीं। बात बात में बात जुबान से निकल गई। इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं।"

"तुम मुझको क्या समझती हो ?"

"मैं तुमको अब भी बुरा नहीं समझती और न बुरा कह सकती हूं। बुरा समझे होती तो तुम्हारे साथ कैसे चली आती। मैंने तुमको भला आदमी समझा। भला समझ कर साथ हुई। अब उस विचार को बदलना नहीं चाहती। वह मेरे जीवन का आधार होगी।"

"कैसे ?"

"किसी ने पत्थर को हाथ लगाया। उससे मूर्ति निकाली। मूर्त्ति चाहे पत्थर की हो, कठोर हो, इसका ख्याल उसे नहीं होता। वह तो उसे मन्दिर में रख कर पूजता ही रहेगा। सारी सृष्टि के गुण अपने विचार से उसमें मानता जायेगा।"

"और परिणाम ?"

"परिणाम यह होगा कि पूजने वाले के हृदय में भक्ति बढ़ती जायगी। हृदय शुद्ध और पवित्र होता जायगा। यह कम बात नहीं है। उसकी दृष्टि पत्थर की कठोरता पर नहीं रहती।"

"तुम बड़ी विचित्र हो।"

"जो कुछ हो। अब तो जो कुछ होना था हो चुका। पीछे हटने से लाभ ही क्या है।"

"तुम्हारी दृष्टि में मैं अच्छा आदमी हूँ ?"

"इसमें सन्देह ही क्या है ! आदि में, प्रसार में और अन्त में तुम मेरे लिये अच्छे ही हो। सब हट जाँय मगर यह विचार मैं कभी दिल से दूर न होने दूँगी।"

इश्क में तेरे कोहगम, सिर पर लिया जो हो सो हो।
ऐश व निशात जिन्दगी छोड़ दिया जो हो सो हो॥
अक्ल के मदरसे से हो, इश्क के मैकदामें आ।
जामे शराब बेखुदी अब तो पीया जो हो सो हो॥

"खेद है ! देखो ! मैंने बुरा किया और अवश्य किया। लेकिन तुमको अभी तक हाथ नहीं लगाया। तुम जैसी थीं वैसे ही हो। मैं तो पापी आदमी हूं ! तुस पवित्र हो। जाओ किसी और से शादी करलो। मेरा विचार त्याग दो।"

यह असम्भव है। जो होने को था हो चुका। शादी जो होने को थी हो चुकी।

राजपूतनी की शादी की हल्दी एक ही बार चढ़ती है।

सिंह गमन सत जन बचन, केला फले यक बार।
त्रिया तेल हमीर हट, चढ़े न दूजी बार॥

"लेकिन हल्दी कहां चढ़ी ?"

प्रत्यक्ष रूप से नहीं तो गुप्तरूप से तो चढ़ गई। मा बाप के घर से लड़की निकल आई। उसे क्वारी कौन कहेगा। और उसका विश्वास कौन करेगा !"

"मैंने तो तुम्हारे साथ शादी नहीं की।"

"शादी मैंने की। वह हो चुकी।"

"मैंने तो तुम्हें हाथ तक नहीं लगाया।"

यह और भी अच्छा हुआ। मेरी शादी शारीरिक या प्रत्यक्षरूप से नहीं हुई। वह संकल्प से, आत्मा से और अप्रत्यक्षरूप से हुई और यह संकल्प मेरी असली सन्तुष्टि का कारण बना रहेगा।"

"फिर तुम क्यों सांडिनी से नीचे उतरी ?"

क्या तुम स्वयं प्रतिज्ञा भंग करने वाली नहीं हुईं।"

"नहीं। यह समय की आवश्यकता और मसलहत का विषय है। पत्थर की मूर्त्ति के सजाने के ख्याल से है। तुमने कहा—"मैं बचन का पालन नहीं करता। मैं कभी किसी समय अपनी भक्ति से सिद्ध कर दिखाऊँगी कि पत्थर की मूर्त्ति भी अपने भक्त की मुराद पूरी कर देती है।"

---

# दूसरा प्रकरण

## संकल्प का जगत

सांडनी सवार अफीम की चुटकी लगा कर उठा। उंटनी पर चढ़ बैठा। एक बार धत की। वह उठी। उत्तर की ओर मुंह किया रेत पर बैठी हुई लड़की को सच्चे पशु प्रेम की दृष्टि से देखा और हवा होगई। वह जा व ह जा ! तेज चाल सांप की तरह तेजी से जमीन के साथ छाती रगड़ती हुई क्षण मात्र में दृष्टि से ओझल होगई। राजस्थान की सांडनियों का क्या कहना है ! सांप बहुत तेज

तेज दौड़ता है। घोड़ों की सरपट मशहूर है। लेकिन इनमें से सांडिनी की तेजी को कौन पहुंच सकता है! वह उठक बैठक करती हुई चलती है। उस पर चढ़कर चलना भी आसान काम नहीं है। पेट का पानी हिल जाता है। आँतें ऐंठने लगती हैं।

रेगिस्तान के कठोर हृदय वाले ही इसकी सवारी करने वाले होते हैं। इसके सिवाय वह किसी और सवारी को पसन्द भी नहीं करते।

सांडनी ने लड़की को दया की दृष्टि से देखा लेकिन साँडनी सवार ने इतना भी तो नहीं किया कि उसे तसल्ली देता और साथ बिठा कर ऐसी जगह उतारता जहाँ दाना पानी का ठिकाना होता।

लड़की सांडनी और साँडनी सवार को उस समय तक देखती रही जब तक वह दोनों दृष्टि से ओझल नहीं हुये। जब ओझल होगये, तब उसका ध्यान अपनी ओर गया। यह दुनिया की रीति है कि जब तक कोई पास रहता है या साथ रहता है तब तक वही दृष्टि, विचार और जुबान का केन्द्र बना रहता है। जब कोई नहीं होता तो विवश अपनी ओर ख्याल जाता है। क्या अच्छा होता कि मनुष्य में आत्म अवलोकन ही होता और वह इतना परदोष दर्शी न होता अर्थात दूसरों के ऐब न देखता तो मानवीय अवस्था से गुजर कर देवताओं की हैसियत में आजाता। लोग आत्म अवलोकन को बुरा कहते हैं यद्यपि आत्म-अवलोकन खुद+आ+बीनी है। इसमें सब कुछ है। सुख और चैन और शान्ति कहां हैं! अपने में हैं या दूसरे में। अपना आप ही ईश्वर है और दूसरों का आपा ही शैतान है, किन्तु इसकी समझ किस को है। जिसने ईश्वर को अपने से अलग समझा वही सच्चे अर्थों में शैतान पूजक है। जो ईश्वर को आपे से अलग नहीं समझता वही सच्चे अर्थों में ईश्वर पूजक है। जब आदमी बाहरी दुनिया से थकथका कर लेट रहता है और मन अन्दर

की ओर झुकता है तब ही उसे नींद आ जाती है और उसे आराम की दशा प्राप्त होती है।

गैर में राहत कहां! राहत है अपनी ज़ात में।
सुन समझ यह राज हक, लमहा में सिर्फ एक बात में॥

लड़की सोचने लगी। गूंगे पशु में दया और स्नेह है। बोलने वाले मतुष्य में इनका पता नहीं है। कौन अच्छा हुआ, मनुष्य या पशु? उसने तो मुझे फिर कर भी नहीं देखा। सांडिनी ने इतना तो किया। आंखों से प्रेम प्रगट तो किया। उससे तो इतना भी नहीं हुआ। कौन कहे और क्या कहे! लेकिन नहीं, पशु पशु है और मनुष्य मनुष्य है। यह नीच जाति का है और वह सज्जन है। क्या प्यार करने वाला पशुभाव नीचता का सूचक है? अंधेर है! यदि इसका नाम सज्जनता है तो फिर मनुष्य सर्वश्रेष्ठ जीव न कहलाता! इसमें कोई न कोई रहस्य है और वह विचार करने योग्य है।

समझ गई। मनुष्य में राग और द्वेष दोनों ही हैं। वह किसी समय इनसे खाली नहीं रहता। पशु जिस भाव की ओर गया उसी का हो रहा। मनुष्य अपनी अक्ल की तराजू में दोनों को तोलता है। यह बात पशु में नही है।

"लेकिन मैंने क्या किया! बुद्धि से काम नहीं लिया। यह कारण है कि वह पशु की तरह एक रुख हो गया। ऐसा क्यों हुआ? यह एक रहस्य है जिसकी गुत्थी शायद किसी समय मैं सुलझा सकूंगी। सम्भव है वह किसी खास उद्देश्य की पूर्ति की धुन में हो और उसने मुझे रुकावट का कारण समझा हो। तब ही तो दूध की मक्खी की तरह बाहर निकाल कर फेंक दिया। मैंने भी अच्छा नहीं किया। इंसानियत से काम नहीं लिया। न सोचा न विचारा! उसकी चिकनी चुपड़ी बातों में आगई। धोखा खागई। गलती की। और यह उसी जुर्म की सजा है जो इस समय बेबसी की दशा में इस

सुनसान रेगिस्तान में पड़ी हूँ। मूर्खता और गंवारपन भी मनुष्य का अपराध है। कुदरत में प्रत्येक अपराध की सजा है।"

"उसने भी बिना सोचे विचारे काम किया। वह मेरे रूप लावण्य के धोखे में आगया। मैं उसे सुन्दर देखकर धोखा खागई। उसे रास्ते में समझ आई। मुझे अब सोचने का अवसर मिला। दोनों जैसे के तैसे निकले। तब ही तो दोनों में परस्पर सहानुभूति पैदा हो गई थी। उसकी यह भावना तो टिकाऊ नहीं थी। मैं इसे जब तक जान है टिकाऊ भावना बनाऊंगी। वह पुरुष है। मैं स्त्री हूँ। स्त्री के लिये एक पुरुष काफी है। पुरुष अधिक स्त्रियों का हविस करता रहता है।"

"मुझे सजा मिली। चाहे वह सजा की शुरूआत हो। उसे भी अवश्य सजा मिलेगी। वह बुरी और कठोर होगी। अभी तक उसकी शुरूआत नहीं हुई है लेकिन वह बिना सजा पाये रह न सकेगा। प्रकृति का नियम दंड और पुरस्कार दोनों पहलू रखता है। इससे किसी मनुष्य के लिये बचाव की सूरत नहीं है। दोनों ही पापी हैं और दोनों ही दंड के भागी होंगे।"

"क्या अच्छा होता कि मैं उसे इस दण्ड से बचा लेती! मैं स्त्री हूँ। स्त्री स्वाभाविक पुरुष की सहायक बनाई गई है। मेरा कर्त्तव्य है कि मैं उसके आड़े काम आऊं।"

"लेकिन वह तो चला गया। कौन जाने कहां गया! न तो उसने अपने घर का पता दिया, न मैंने ही उससे पूछा। मेरी अक्ल पर पत्थर पड़े हुये थे। मैं उसे देखकर दीवानी हो गई। वह इस दीवानी को रेगिस्तान में लाकर छोड़ गया। लेकिन उसने कौनसा बुद्धिमत्ता का काम किया! एक अल्हड़, अज्ञान और निर्दोष लड़की के सरल स्वभाव का अनुचित लाभ उठाया। दोनों ही दीवाने ठहरे! और दोनों ने ही दूषित कर्म किया। दोनों ही को दण्ड मिलेगा। फिर भी यदि पता चला तो मैं उसे आपत्ति से बचाऊंगी। वह मेरे नाम पते

और घर को जानता है। कौन जाने किसी समय उसे खेद प्रतीत हो और वह मेरी खोज में निकले। मनुष्य के हृदय में भले बुरे हर तरह के विचार उभरते रहते हैं। उस समय सम्भव है वह मुझ से आकर मिले और अपराधी न रहे।"

"क्या मैं अब मां बाप के घर जाऊंगी! राम राम! ऐसा कभी न होगा। अब घर में रखने कौन लगा! और मैं स्वयं रहने क्यों लगी! पेट से निकला बच्चा और अंडे से बाहर आया हुआ पक्षी फिर पेट में या अंडे में वापिस नहीं जाता।"

"अब क्या करूं! वह तो छोड़ भागा। भगेड़ू का पीछा करना चाहिए या नहीं! वह लाख भागने को भागे, जाता कहां है! और कैसे जायगा! अगर दिल में शक्ति है और वह मकड़ी को तरह जाल तन सकने पर उतारू है तो मक्खी कभी न कभी आकर फंस रहेगी।"

"मनुष्य ईश्वर का केवल ध्यान करता है। रूप बनाने का नाम ध्यान है। दिल के चित्रघर में ईश्वर का रूप बन जाय। फिर वह कैसे दिल के अन्दर आकर बन्दी न बन सकेगा! सच्चे ध्यान की जरूरत है।"

"लोग पत्थर की मूर्त्ति गढ़ कर मन्दिर में रखते और उसकी प्राण प्रतिष्ठा करते हैं। सुना है कभी कभी मूर्ति बोल उठती है। बुलाने वाला उसका भक्त ही हुआ है।"

"यहां तो जिन्दा मूर्त्ति मौजूद है। मन एकाग्र होकर जाल तने और उसे पकड़ बुलाये। जहां मन से विचार की शक्ति की आकर्षण की धारें निकल निकल कर उस पर आक्रमण करने लगेंगी, वह धरा बांधा हुआ अपने आप चला आयगा। क्या मजाल कि वह मेरे खिचाव का सामना कर सके। एकाग्र चित्त क्या नहीं कर सकता। चुम्बक पत्थर जिस तरह लोहे को खींचकर अपने आप में चिमटा लेता है मैं भी उसे खींचकर अपने आधीन बनाऊंगी। आज वह विद्रोही होकर गया है कल देखूंगी वह कैसे बगावत (विद्रोह) करता है।"

"स्त्री आवाज उठाने वाली, विनाश करने वाला और इकट्ठा करने वाली कहलाती है। यदि मैंने उसे खींचकर उसे अपना साथी न बनाया तो फिर व्यर्थ स्त्री का चोला लिया।"

"जेठ के महिने में हिन्दू स्त्रियां बर (बट वृक्ष) की पूजा करती हैं। इस वृक्ष के चारों ओर हजारों कच्चे सूत के धागे लपेट देती हैं। तब पूजा की रसम पूरी होती है। यह पूजा वास्तव में वृक्ष की पूजा नहीं है। वर पति को कहते हैं। उस वर पूजा से अभिप्राय पति की पूजा है। मैं भी जेठ तक इस काम को पूरा करूंगी और उस नासमझ को ऐसे कच्चे सूत के धागों में बांधूंगी कि फिर वह डोल न सकेगा। आज सांडनी पर चढ़कर चला गया फिर वह ऐसे फंसाव में फंसेगा कि छुटकारा पाने का नाम तक न लेगा।"

"मैं राजपूतनी हूँ। राज कहते हैं अधिकार करने को। यदि मैंने पति पर अधिकार न किया तो मुझे सच्चा राजपूतनी कहलाने का हक कब रहेगा।"

अच्छा जी ! आज तुम भागे तो भागे, फिर देखूंगी।
हाथ झटक कर चल दिये, निबल जान कर मोहि।
हिरदे से जब जाओगे, पुरुष बखानूं तोहि॥

"यह जगत क्या है ! पुरुष प्रकृति के खेल का मैदान हो तो है। पुरुष बिना प्रकृति रह नहीं सकता। ब्रह्म से ब्रह्मपना और ईश्वर से ईश्वरपने को किसने अलग किया ! बिना खुदाई के खुदा कैसा ! न कभी किसी ने कानों सुना न आंखों देखा। सत्ता के बिना सत खाली रहा है ! और यह अगर ठीक है तो फिर यह झगड़ मुझ से अलग कब रह सकता है।

वह खुदा गर है तो मैं उसकी खुदाई हो चुकी।
आशना जब बन गया वह, आशनाई हो चुकी।
जात हक को बेहकीकत, के किसी ने कब सुना।
जब वह है हक रसकी, उस तक हक रसाई हो चुकी॥

मुझको अपना जब बनाया, कैसी अब बेगानगी।
वह यगाना—उससे सब मेरी भलाई हो चुकी॥
तू कहाँ जाता है मूजी! कैसे जायेगा बता।
तन की साया से कहो, कैसे जुदाई हो चुकी॥

गया! गया! कहां गया! फिर आयेगा। और अब इस तरह से चिमट कर रहूंगी जैसे पेड़ से लता चिमटी रहती है। यदि स्त्री हूं तो मेरे माया जाल में फँसेगा। जब ब्रह्मा तक को स्त्री चरित्र का पता नहीं है तो वह मेरे त्रिया चरित्र को कैसे समझेगा।"

---

# तीसरा प्रकरण

## दैवी सहायता

जीवन की घटनायें कभी कभी इस तरह विचित्र नियम के साथ प्रगट होती हैं मानों कल्पित नाटक के पर्दे एक के बाद एक उठते और गिरते हैं। एक एक मनुष्य का जीवन समुद्र के ज्वार भाटे के समान होता है। जैसी दशा समुद्र की है वही हर व्यक्ति और सामूहिक जीवन की है। जैसा यह वैसा ही वह। वहाँ भी हर वस्तु जँची तुली रहती है और यहां भी हर घटना गढ़ी गढ़ाई आती है। कभी कभी विवश होकर इस परिणाम पर पहुंचना पड़ता है कि अनादि माया ने पहिले ही से, सब सोच समझ कर जोड़ बाकी (मिलाप और बिछोह) और गुणा भाग से काम लिया है। स्वभाव अलग अलग बने हैं। कोई वस्तु विशेषता से रहित नहीं है। सर्व

साधारण के लाखों तर्क पेश किये जांय किन्तु विशेषता को कभी अलग नहीं किया जा सकता। युवा, बूढ़े बच्चे सब निराली विशेषता रखते हैं। यह क्यों है ? यह हैं कि

जैसे बनाया गया जैसा वैसा होता है।
कोई है हँसता यहां कोई आके रोता है॥

लड़की तो लड़की है लेकिन बहुत लड़के ऐसे मिलेंगे जो बचपन ही में बूढ़ों के कान कतरते हैं और कितने बूढ़े ऐसे दृष्टिगोचर होंगे कि आयु पर्यन्त लड़के ही बने रहते हैं। फिलोस्फर अगले पिछले कर्म के सिर यह विभिन्नता थोपते हैं। उन्हें अधिकार है क्योंकि वह कुदरत में इसी राग अलापने के लिये आये हुये हैं। सच्ची बात तो उस सूफी के शब्दों में मिलती है जो जोरदार लहजे में सुना गया है कि प्रकृति ने प्रत्येक जीव को किसी विशेष काम के लिये बनाया है और उसके अन्दर उसीकी इच्छा उत्पन्न की गई है। एक बात हो तो कोई कहे। यहां कण कण में विशेषता दिखाई पड़ती है।

हर फूल का है रंग जुदा देख लीजिये।
हर बर्ग का है ढंग जुदा देख लीजिये॥
जरों में इख्तलाफ है कतरों में इख्तलाफ।
कुदरत बता रही है हमें साफ साफ साफ॥
यकसां कहीं नहीं कोई दो शै में।
है इख्तलाफ जिस्म में दिल और जान में॥

लड़की तो लड़की ही थी। इसमें किसे सन्देह है लेकिन वह हिन्दुओं की बूढ़ी स्त्रियों की तरह सोच रही थी। उसे किसने इस प्रकार सोचने का स्वभाव दिया ? कुदरत ने। यह भी एक रहस्य है जिसके हल करने की कुंजी अब तक बुद्धिमान मनुष्य के हाथ नहीं आई।

वह विचार में इतनी लीन थी कि उसे उसके अतिरिक्त और किसी का ध्यान नहीं था।

यह सम्भावना उसके जीवन की विशेषता रही होगी। वह एक बार धोखे में आगई। अब उसी के सुधार और उस से लाभदायक शिक्षा और लाभदायक परिणाम निकालने पर तुली बैठी थी और कहां ? किस जगह ? सुन सान, वेहड़ और भयानक रेगिस्तान में।

आवाज आई। "यह तू कौन है जो यहां अकेली बैठी हुई है ?"

सिर उठाया। उत्तर दिया—"तुम कौन हो और किस प्रयोजन से पूछ रहे हो ?"

प्रश्न कर्त्ता एक दूसरा सांडिनी सवार था, जो उसी दिशा से आया था जिस दिशा से लड़की आई थी। सम्भव है उसे ख्याल पैदा हुआ हो कि यह उसी की खोज में आया हो किन्तु वह निडर थी। वह अपने विचार की साक्षात् मूर्ति बन गई थी। प्रश्न कर्त्ता के प्रभाव में नहीं आई। यह उसकी निडरता को देख कर दंग रह गया। सांडनी से नीचे उतर आया।

"मैं इसलिये ये पूछता हूं कि यदि कोई तेरे साथ नहीं है तो तेरी सहायता करूं।"

"क्या सहायता के लिये यह शर्त है कि आदमी प्रश्न करे ?"

"नहीं"

'फिर यदि सम्भव हो तो सहायता करो। मैं अकेली हूं। और यह न पूछो कि तू कौन है।"

"बावली है ?"

"क्यों ? क्या लोग बावली की सहायता नहीं करते।"

"करते हैं।"

"फिर जो कुछ तुमसे हो सके, सहायता करो। इस समय तुम्हारा यही कर्त्तव्य है।"

"मालुम भी तो हो कि तू कौन है ?"

"सूरत देखो। हाल न पूछो। मैं शर्त के साथ सहायता नहीं चाहती।"

"यह भयानक रेगिस्तान है।"

"मैं यह जानती हूँ।"

"फिर ?"

"फिर यह कि तुम मुझे अपने साथ ले चलो। किसी जगह उतार देना। तुम अपनी राह लेना, मैं अपनी राह लूंगी। इससे अधिक और कुछ नहीं चाहती।"

इसने समझा कोई व्यक्ति इसे यहां लाकर छोड़ गया है और दुख से दिल बिगड़ गया है। बुद्धि ठिकाने नहीं रही। अथवा किसी दुख से यह स्वयं भाग आई है और एकान्त के भय ने इसे बावली बना दिया है। उसे ध्यान से देखा। लड़की रूपवान थी। शरीर सुडौल ! समस्त अंग सुन्दरता के सांचे में ढले हुये !

"तू बड़ी सुन्दर है !"

"दूसरे लोग भी ऐसा ही कहते हैं।"

"तुझे घर में रहना चाहिये था।"

"किन्तु जिसके घर न हो, वह क्या करे।"

"तेरी जैसी सुन्दरता तो कुदरत की उच्चकोटि की देन है।"

"मैं इसके प्रतिकूल समझती हूं। मेरे लिये यह निकृष्ट वस्तु सिद्ध हुई। न रूपवती होती, न यहां लाकर फेंकी जाती।"

"किसी ने यहां लाकर छोड़ दिया है।"

"यह सच है कि मैं स्वयं यहां नहीं आई। लाने वाला और व्यक्ति था।"

"वह कौन है ?"

"ईश्वर ! ईश्वर के अतिरिक्त किसी को कौन कहां लाता है।"

अब तो सांडिनी सवार को पूरा पूरा विश्वास होने लगा कि यह पागल है। आपत्ति ने इसकी बुद्धि नष्ट करदी। फिर भी ठौर ठिकाने की बातें कर रही है।

"यदि मैं तुझे अपने साथ न ले चलूं, तो क्या करेगी ?"

"देखो ! झूठी बातें न करो। तुमको तो ऐसा ख्याल तक नहीं है और व्यर्थ अगर मगर कर रहे हो। यदि तुम न लेजाओगे तो कोई दूसरा आकर ले चलेगा ! मैं यहां तो नहीं रह सकती। मैं जंगल की जीव नहीं हूँ।"

"कौन ले जायगा ?"

"ईश्वर, ईश्वर के सिवाय और कौन लेजा सकता है ?"

"मैं ईश्वर तो नहीं हूँ ?"

"तुम ईश्वर हो। तुम आप आये हो, इसलिये ईश्वर (खुदा) हो और ईश्वर पर मुझे पूरा विश्वास है।"

"जो लाकर यहां छोड़ गया, क्या वह भी ईश्वर था ?"

"हां, वह भी ईश्वर ही था।"

यह हंसा—"मैं तो अब तक सुना करता था कि दुनियाँ में एक ही ईश्वर है और तू ने दो ईश्वर बता दिये।"

"दो को क्या, यहां हजारों, लाखों और अनगिनत ईश्वर हैं। ईश्वर से रहित रेत का एक कण भी नहीं है। देखने वाले देखते हैं, सुनने वाले सुनते हैं। जिन्हें आंख कान नहीं हैं वह क्या देखेंगे और क्या सुनेंगे !"

यह सोचने लगा कि या तो यह दीवानी है या इसी आयु में ज्ञानी है।

"दुनिया में अनगिनत ईश्वर कैसे हैं ?"

जो जिसे अत्यन्त आदर और प्रेम की दृष्टि से देखे, वही उसका ईश्वर है। लालची का ईश्वर मालमता, ज्ञानी का ईश्वर ज्ञान, ध्यानी का ईश्वर ध्यान, स्त्री का ईश्वर पति, भक्त का ईश्वर भगवन्त, ब्राह्मण का ईश्वर उसकी मन्दिर की मूर्त्ति, पंडितों का ईश्वर उसके पोथी पत्रा। कैसे मानूं कि यहां एक ही ईश्वर है।"

तू बड़ी समझदार मालुम होती है। मैंने तुझे पागल समझा था।"

"जो जैसा है वह दूसरों को वैसा ही समझता है।"

"क्या मैं पागल हूँ ?" "जब मुझे पागल समझते थे, तब पागल थे। अब समझदार समझते हो, समझदार हो। पागल नहीं हो।"

यह उसकी बातें सुनकर दंग रह गया।

"ईश्वर तुझे यहां किस लिये छोड़ गया ?"

"जिस लिये समुद्र के मोती, पहाड़ के हीरा निकाल कर बाहर कर दिये जाते हैं। वही गरज मेरे यहां छोड़ जाने की होगी। इसके अतिरिक्त कोई बात समझ में नहीं आती।"

"जिसने यह काम किया, उसने अच्छा नहीं किया।"

"क्यों ?"

"तुझ पर कष्ट का पहाड़ ढा गया।"

"सच है। मैं भी पहिले ऐसा ही समझती थी किन्तु सोना तपाया जाता है, तब कुन्दन होता है। हीरा घन की चोट सहता है, तब चमकदार होता है। लकड़ी खराद पर चढ़ कर सुडौल बनती है। पत्थर पर हथोड़े बरसते हैं तब उसमें सुन्दर मूरति निकलती है। अब मैं इस तरह समझ रही हूं।"

सांडनी सवार भी जाति का राजपूत था। जहां उसमें बांकपन था वह उदार भी था। उसकी समझ में आने लगा कि यह लड़की पहिले जन्म की योगिनी है। कोई खोटा कर्म होगया होगा, उसको भोगने के लिये दुनियां में आई और आपत्ति का शिकार बनी। हृदय में विश्वास ने जगह करलो।

"मैं हर प्रकार से तेरी सहायता करने को तत्पर हूँ।"

"तुमको सहायता देने और मुझे सहायता लेने का अधिकार है। इसमें दोनों का भला है।"

"अच्छा ! उठ, मेरे साथ सांडिनी पर सवार होले। तू जहां कहेगी वहां पहुंचा दूंगा,"

वह उठी, उंटनो पर चढ़ बैठी। आगे राजपूत, पीछे राजपूतनी लड़की ! राह में फिर बात चीत की नौबत नहीं आई। एक जगह बीच में सस्ताने और सांडनी के दाना पानी देने के लिये उतरे। दोनों ने जो कुछ हाथ लगा खाया पीया। शाम होते होते गांव में पहुंचे। एक मकान की ओर चले। उतर कर उसमें चले गये। घर की मालिक एक स्त्री थी। वह मिलने के लिये दौड़ी।

सांडनी सवार ने उससे कहा—"चाची ! मेरे साथ इस बार एक ज्ञानी ध्यानी योगिनी आई है। इसकी सेवा सुश्रूषा का विशेष ध्यान रखना।"

---

# चतुर्थ प्रकरण

## योगिनी

रात बीती, दिन निकला। अंधेरा मिटा, प्रकाश आया, सोने वाले उठे, नहाये धोये, पृथानुसार पूजा पाठ किया। भतीजे ने चची के सामने लड़की को पेश करके कहा, "चची ! यह लड़की देवी है। मैंने अपने जीवन में ऐसा समझदार व्यक्ति नहीं देखा। यह यदि तुम्हारे घर में रहना चाहे तो इसकी खातिरदारी का लिहाज रखना यदि न रहना चाहे तो इसे अधिकार है, जहां चाहे चली जाय। रोक टोक की आवश्यकता नहीं है।"

यह कह कर वह लड़की को चची से मिला कर घर के बाहर चला गया।

चची झुकी। लड़की के पाँव छूने लगी। उसने अपना पाँव हटाया। "माई! मेरे पाँव को हाथ न लगाओ। कांटे में घसीटना ठीक नहीं है। मैं इस योग्य नहीं हूँ कि कोई मेरा आदर मान करे।"

"चची-तुम देवी ही होगी, तब तो मेरा भतीजा तुम्हारी इतनी प्रशंसा करता है। वह हमारे कुल में बुद्धिमान और भला समझा जाता है।"

लड़की—"जो भला है वह दूसरों को भी भला समझता है। इसके लिये उनकी प्रशंसा है न कि मेरी।"

चची—"क्या तुम योगिनी नहीं हो ?"

लड़की—"नहीं, मैं सीधी सादी लड़की हूं।"

चची—"ब्राह्मण की कन्या हो ?"

लड़की—"नही, मैं जाति की राजपूत हूं।"

चची ने उसे ध्यान से देखा। "कहाँ घर है ?"

लड़की "मैं अपना पता बताना नहीं चाहती।"

चची को आश्चर्य हुआ। क्वारी हो या विवाह हो चुका है ?'

लड़की—"माई! यह सवाल न करो। दो में से एक भी नहीं हूं और दोनों ही समझलो। जैसी मां के पेट से आई थी। वैसे ही हूं।"

चची—"तुम मेरे घर रहोगी ?"

लड़की की आँखों में आंसू आगये। "जिसके घरबार न हो और कोई उसे अपने घर में रखना चाहे तो वह क्यों इंकार करेगी किन्तु तुम्हें बिना जान पहिचान के सन्देह हो और तुम मुझे अपने घर रखना पसन्द न करो।"

चची—"मैं भोली भाली स्त्री हूँ। इन बातों को नहीं समझती। यदि रहो तो मेरे सिर आँखों पर। घर में मेरी इकलौती लड़की है और मैं हूँ या कभी कभी मेरा यह भतीजा आकर रहता है। यदि

तुम रहोगी तो मुझे प्रसन्नता होगी। सेवा टहल के लिये स्त्रियां हैं। रात को सब चली जाती हैं। मैं अकेली रहती हूँ।"

लड़की—"आपकी बेटी कहां है?"

चची—"यहां से पाँच कोस की दूरी पर मेरे भाइयों का मकान है। वह अपने मामा के घर गई हुई है।"

लड़की—"कब तक आयेगी?"

चची—"शीघ्र आजायेगी।"

लड़की—"मुझे किस हैसियत में रक्खोगी?"

चची—"मैंने तुम्हारी बात नहीं समझी।"

लड़की—"मुझे कोई काम काज सुपुर्द करोगी?"

चची हँसी—"मैं दुर्भाग्यनी हूं। इस घर मैं आते ही पति दो वर्ष बाद ही इस दुनिया से चल बसे। यह लड़की पालन पोषण के लिये छोड़ गये। इसका विवाह पक्का होगया है। वह भी विवाह के बाद अपने घर चली जायगी। तब मुझे अकेले ही रहना पड़ेगा।"

घर में कोई अपना विशेष काम काज नहीं है। भोजन मैं आप बनाती हूं। तुमको काम करने की आवश्यकता कब है। मैं स्वयं तुम्हारी सेवा टहल करूँगी और यह समझूंगी कि तुम भी मेरी लड़की ही हो।"

अपना हाल सुनाते सुनाते चची का दिल भर आया। उसकी आंखों से आंसू बहने लगे। लड़की की आँखों में भी पानी भर आया।

लड़की ने पूछा—"विवाह कब तक होगा?"

चची ने उत्तर दिया—"यह क्वार का महिना है। विवाह जेठ में बर पूजा का बनता है। इस तरह नौ महिने बाकी रहते हैं। तब लड़की चली जायगी। और मैं अकेली रह जाऊँगी।"

लड़की—"नौ महिने कम नहीं होते। यदि तुम्हारी लड़की यहां होती तो मैं उन्हें हिन्दी और कुछ संस्कृत पढ़ा देती। मैं पढ़ी लिखी

हूं। और नहीं तो तुम्हारी दया का बदला इसी रूप में देती।"

चची मुस्कराई। "यह लो। न दया न अहसान और तुमको अभी से बदला देने की चिन्ता पड़ गई। मैं तो तुम्हें अपनी धर्म की बेटी बना कर रखना चाहती हूँ।"

लड़की—"मैं तुम्हारी धर्म की बेटी हो चुकी। आज से मैं तुमको मां समझूंगी।"

चची प्रसन्न होगई।

लड़की—"क्या ऐसा नहीं हो सकता कि विवाह के बाद लड़की तुम्हारे घर में ही रहे ? जिस घर में लड़का नहीं होता है, लड़की ही होती है, वहाँ प्राय: लोग विवाह के बाद जमाई को रख लेते हैं।"

चची—"मेरा और भतीजे का यही विचार है लेकिन कुछ कहा नहीं जा सकता। कौन जाने लड़के का बाप इसे पसन्द करेगा या नहीं। वह बड़ा रईस आदमी है।"

लड़की—"और लड़का !"

चची—"लड़का क्या कर सकता है। मां बाप के सामने लड़कों की कब चलती है।"

लड़की—"तुम ने लड़के को देखा है ?"

चची—"हां, देखा है। लड़का रूप रंग का अच्छा है। जैसी मेरी लड़की है वैसा ही वह भी है। इसी कारण मैं ने और मेरे भतीजे ने उसे पसन्द किया है।"

लड़की—"मैं भी उसे देखूंगी।"

चची—"क्यों नहीं, जब चची के साथ तुम्हारा हर समय का रहना सहना है तो अवश्य देखोगी। लड़के में विचित्र तरह का रूप है। जो देखता है उसीका हो जाता है। आंखों में विशेष प्रकार की आकर्षण शक्ति है जो हृदय को अपनी ओर खेंच लेती है।कौन जाने तुम भी उसे देख कर अपना योग और ज्ञान भूल जाओ !"

लड़की—"मैं अपने आप को ऐसा नहीं समझती।"

चची मुस्कराई—"हाँ योगसाधन से तुममें विशेष प्रकार की शक्ति आगई हो तो मैं नहीं कह सकती। तुम योगिनी हो, लेकिन उसकी आँख में जादू है जो अपना प्रभाव किये बिना नहीं रह सकता। मैं इसकी परीक्षा कर चुकी हूं।"

लड़की—"तुम सच कहती हो। आंखों में बहुत बड़ी आकर्षण शक्ति है। और चाची! इस शरीर में तो जो कुछ है आंखें ही हैं। आंखों के बिना जीना मरना समान हैं।"

चची—"सच है। ऐसा ही है।"

लड़की—"ईश्वर मनुष्य को आँखों के धोखे से बचाये।"

'उनका मारा हुआ जी नहीं सकता। आंखों में प्रेम है। आंखों में घृणा है। आंखें मारती हैं आंखें जिलाती हैं। आंखों से पानी बरसता है और आंखों से अग्नि के शोले निकलते हैं। आदमी किसी वृक्ष को कुदृष्टि से देखेगा, हरा भरा वृक्ष सूख जायगा। नीरोग रोगी हो जायगा। जैसे नजर बुरी होती है वैसे ही नजर (दृष्टि) अच्छी भी होतीहै।"

चची—"तुम बहुत जानती हो। पढ़ी लिखी योगिनो जो ठहरी।"

लड़की मुस्कराई—"यह साधारण सी बात है। छिपकली कीड़ों की आँख से आंख मिला कर उनकी चाल रोक देती है। मकड़ी आँखों ही से मक्खियों का शिकार करती है। साँप जब उड़ती हुई चिड़िया को देख लेता है, वह उड़ना भूलकर उसके मुंह में आजाती है। मेरे गाँव में एक लड़की थी। उसकी नजर अच्छी नहीं थी। जहां वह किसी के घर में पहुँची, बच्चे वाली मातायें बच्चों को छुपा देती थीं कि कहीं बुरी नजर न लग जाय। कोई उसके सामने गाय भेंस को नहीं दुहता था कि कहीं उनका थन न सूख जाय। मैंने इन बातों को स्वयं देखा है। इसलिये विश्वास है।"

चची—"फिर तो तुम मुझसे अधिक समझती हो।"

लड़की- "क्या तुम्हारी बेटी के मंगेतर की सचमुख ऐसी ही आंखें हैं ?"

चची—"सुनती तो ऐसा ही हूँ। देखा भी है।"

लड़की—"उसका नाम ?"

चची—"रतनसिंह ! जाति का चौहान है।"

लड़की—"रहता कहाँ है ?"

चची—"यहां से दस कोस की दूरी पर रामपुर ग्राम है। उसका बाप जमींदार और बड़ा आदमी है। वहां ही रहता है।"

लड़की—' यह आदमी देखने के योग्य है।"

चची—"मेरा भतीजा भी ऐसा ही कहता है। वह उसे रामायण का बाली कहता है। बाली के आँखों में इतनी शक्ति थी कि जिसे देख लेता था, उसका बल अपने में ले लेता था और युद्ध में उसे कोई विजय नहीं कर सकता था। यही कारण है कि रामचन्द्रजी युद्ध के समय उसके सामने नहीं आये। वृक्ष की आड़ से मारा। वह बाली से डरते थे।"

लड़की—"कृष्णजी की आंखों में भी यह शक्ति थी जिसके कारण वह मनमोहन और चितचोर कहलाते थे लेकिन कृष्ण और बाली में अन्तर था। बाली दिल का बुरा था। कृष्ण दिल के भले थे।"

चची—"क्या नेक थे ! मातायें उन पर लट्टू थी। स्त्रियां अपने पति से बढ़ कर समझती थीं। गोपियां हर समय प्राण निछावर करती थीं। गायें, ग्वाल बाल सब ही पर उनकी आंखों का प्रभाव रहता था। कृष्ण ईश्वर के अवतार थे। इसलिये जो चाहो कहलो लेकिन मैं स्त्रियों के विषय में उनका व्यवहार अच्छा नहीं समझती।"

लड़की—"नहीं, चाची ! तुमने गलत परिणाम निकाला। जो तुम कहती हो सब सच है किन्तु कृष्ण जी निर्दोष थे। उन्होंने

कभी किसी स्त्री को कुमार्ग पर नहीं चलाया। हाँ प्रेम का खेल सबको खिलाया। यहां तक ठीक है। वह योगीराज थे!"

चची—"रतनसिंह भी कुंवर कन्हाई कहलाता है। क्या वह भी योगी है?"

लड़की—"मैं नहीं जानती, किन्तु मैं स्वयं दृष्टि साधन करने लगी हूँ। यह योग का एक अङ्ग है।"

चची—"देखना कहीं रतनसिंह का सामना न कर बैठना। वह लड़का है। मेरे एक ही लड़की है।"

लड़की हँसी—"विश्वास रक्खो मैं तुम्हारी लड़की की प्रति द्वन्दी न बनूंगी। तुम्हारे भतीजे का नाम क्या है मैंने उनसे नहीं पूछा।"

चची ने आश्चर्य की दृष्टि से देख कर उत्तर दिया—रामसिंह नाम है। उसके पिता दो भाई थे। मेरे जेठ तारासिंह को बड़ी जायदाद मिल गई। वह यहां से चले गये। इस गांव की पूरी जमीदारी मेरे पति को देगये। रामसिंह यहाँ से तीन कोस की दूरी पर बलपुर में रहता है। कभी कभी मुझे देखने आता है। अब घर का कर्त्ता धर्ता वही है।"

---

# पांचवाँ प्रकरण

## सहेलियां

दो लड़कियां गले मिलीं। आंख से आंख मिलने की देर थी। दोनों मित्र बन गईं। देह से देह, होठ से होठ, छाती ते छाती मिलते हैं। आंख से आंख मिलना इन सब से अच्छा है। कुत्ता चौराहे पर पड़ा सोया करता है। तुम उधर से निकले। आंखें खोलीं। आंख से

आंख मिली। उसने अपनी आंखों द्वारा तुम्हारी आंखों से पूछ लिया कि तुम बुरे आदमी हो या भले आदमी हो, यदि अच्छे निकले तो वह आँख मीच कर निर्भय होकर सोगया। यदि तुम्हारी आंखों ने उसकी आंखों को बता दिया कि तुम बुरे आदमी हो तो फिर या तो वह गुर्रायेगा भूकेगा या दुम दबा कर भाग जाएगा। इससे सिद्ध होता है कि आँखें आंखों से परस्पर बातें करती हैं। उनका वार्तालाप विचित्र ढंग का होता है। शेर की आंख आदमी की आंख से मिले। जब तक वह यकटकी मिली रहेंगी, वह हमला न करेगा और यदि आदमी की आंख झपकी तो आदमी का गला और शेर का पंजा। आदमी नीचे और शेर ऊपर ! यही दशा दूसरों की भी होती है।

आंखों के दो चार होने में मुरब्बत है छुपी।
आंख झपकी, फिर समझना, खुल गई दिल की बदी ।।

आंखों का मिलाप इसलिये खूब होता है लेकिन यह बाहरी मिलाप है। अन्तरीय मिलाप मनका मिलाप होता है। जब आँख मिल जाती है और दो मिलने वाले अनुकूल और एक समान तबीयत के सिद्ध होते हैं तो मन भी मिल जाता है। मन का मिलना कितनी बात है।

"बहिन ! तुम्हारा क्या नाम है ?"

"मेरा नाम मोहनी है और तुम्हारा नाम ?"

"मेरा नाम मिरनालिनी है।"

"मेरे नाम का तो अर्थ है मोहने वाली, लेकिन मिरनालिनी क्या होती है ?"

"मिरनालिनी कमलिनी है। मिरनालिनी छोटे कमल को कहते हैं।"

"अहा ! तुम्हारा नाम तो मेरे नाम से भी अच्छा है।"

"किस तरह ?'

"मोहनी मोहती है यद्यपि मैंने आज तक किसी को नहीं मोहा

किन्तु कमल का फूल सुन्दर, सुसरूप, सु-रंग और सुगन्ध वाला होता है। ईश्वर ने तुम्हें बहुत सुन्दर बनाया है।"

"क्या तुम रूपवान नहीं हो ? तुमतो मुझसे कहीं अधिक सुन्दर हो।"

"झूठ—तुम मुझसे अच्छी हो।"

"नहीं तुम मुझसे अच्छी हो।"

"बहुत अच्छा ! फिर हम तुम दोनों अच्छी ! अब तो झगड़े की कोई बात नहीं रही।"

"जी चाहता है मैं तुम्हारा नाम छीन लूं। तुम मोहिनी होजाओ मैं मिरनालिनी बन जाऊँ।"

"नहीं, यह बात ठीक नहीं है, जो जिसका नाम हो, वही ठीक है।"

"तुम मोहिनी न बनोगी ?"

"नहीं, मैं मिरनालिनी ही बनी रहूंगी जो जिसका नाम व निशान हो, उसी पर राजी रहे।"

"अच्छा हुआ, तुम आगईं। मैं हमेशा से अकेली हूं। ऐसी दुर्भाग्यनी पैदा हुई कि मेरे और कोई भाई बहिन पैदा नहीं हुआ।"

"यह भाग्य की बात है। इस पर किसी का क्या अधिकार है।"

"अब तुम मेरी बहिन हो।"

"हाँ, मैं तुम्हारी बहिन रहूँगी।"

"हमेशा मेरे साथ रहोगी ?"

"बहिन साथ नहीं रहतीं। बहिन बहिन का साथ कैसा !"

"क्यों ?"

"चलो, बात पूछती हो, बात की जड़ पूछती हो। कल तुम्हारा विवाह होगा। दूल्हा आयेगा। तुमको अपने साथ अपने घर ले जायगा। मेरा तुम्हारा साथ कहां रहेगा !"

"तुम भी मेरे साथ चलना।"

"नहीं, बहिन बनने में हानि नहीं। मैं बाँदी होना नहीं चाहती कि दुलहिन के डोले के साथ जाऊँ। फिर भी राजपूतिनी हूं।"

"तुमको बांदी कौन कहेगा ?"

"फिर क्या कहेगा ?"

"बहिन बहिन !'

'नहीं।'

"तब सहेली कहलाओगी। सहेली कहलाना तो बुरा नहीं है।"

'सहेली साथ नहीं जाती हैं।'

'तब तुम छूट जाओगी।'

'ऐसा तो होना ही है। दुनियां में सब मिल कर बिछुड़ते हैं। कौन जाने जीव कहाँ से किस-किस को छोड़कर आता है और फिर यहां भी साथ छुटता ही रहता है। मुझ पर क्या विशेषता है। विवाह हो जाने पर तुम अपनी मां तक को छोड़ जाओगी।' मोहनी हृदय की कोमल थी। रो पड़ी। मिरनालिनी ने आंचल से उसके आंसू पोंछे।

'बहिन ! तुमने यह क्या किया। आज ही मिली और आज ही बिछुड़ने की बातें सुना कर दुखी कर दिया।'

'मैं क्या करती। सच्ची बात जुबान पर आगई। कह सुनाई।'

'सब छुट जाये। तुम न छूटो। जन्म जन्म में एक बहिन मिली और वह बिछुड़ने की धमकी देने लगी।'

'मिरनालिनी हँसी—तुम्हारी बात सुन कर मुझे हँसी आती है।'

'बड़ी भोली भाली हो।'

'मोहिनी—'और मुझे तो रोना आता है।'

मिरनालिनी—'जिस दिन मनुष्य जन्म लेता है, रोता ही आता है और जन्म भर रोता ही रहता है। कोई कोई होगा जो हँसता हुआ मरता होगा अन्य था सब के सब रोते ही जाते हैं। पहिले

दिन का रोना जीवन का आदि है और अन्तिम दिन का रोना उसका अन्त है। जैसा आदि वैसा ही अन्त।

रोते आये जगत में, रोते चले संसार।
नर जीवन रोना भया, दया करे करतार॥

मोहनी—'मैं रोना पसन्द नहीं करती।'

मिरनालिनी—'पसन्द करो या न करो। रोना पड़ेगा। तुम भी रो पड़ी थीं।'

मोहनी—'यह हँसी का रोना था।'

मिरनालिनी—'जिस दिन पति आकर पकड़ लेजायगा, वह भी हँसी ही का रोना पडेगा। रोना तो आवश्यक ही है। ईश्वर करे तुमको सदा हंसी का रोना पड़े।''

मोहनी—'तुमको।'

मिरनालिनी—'मेरी न पूछो। मेरा जीवन और तरह का है।'

मोहनी—'वह क्या ?'

मिरनालिनी—'मुझ से न रोते ही बनता है न हँसते बनता है। मेरे जीवन में संसार का सुख नहीं है। इसलिये हँसी का रोना तो सदा के लिये गया और मैं संसार के दुख की परवाह नहीं करती। इसलिये दुख का रोना भी मुझे न मिलेगा।'

मोहनी ने उसकी बात नहीं समझी। वह सीधे स्वभाव की लड़की थी। मिरनालिनी ने गालों को थपथपा कर कहा—"मैं नहीं समझती तुम क्या कहती हो।"

'तुम योगिनी हो।'

मिरनालिनी—'हां, मैं योगिनी हूँ। विधाता ने मुझे ऐसा ही बना दिया।'

मोहनी—'मै तुमको योगिनी न रहने दूँगी।'

मिरनालिनी—'फिर क्या करोगी।'

मोहिनी—'अपने साथ रक्खूंगी।'

मिरनालिनी—'असम्भव।'

मोहनी—'होगा और होकर रहेगा।'

मिरनालिना खिलखिला कर हँस पड़ी। 'बेतुकी बातें न करो।

मोहनी—'मेरा घर तुम्हारा घर होगा। मेरे लड़के बाले तुम्हारे लड़के वाले होंगे।'

मिरनालिना—'और पति ?'

मोहनी—'मेरा पति तुम्हारा पति होगा। मर्द दो दो तीन तीन विवाह करते हैं। राजपूतों में ऐसा रिवाज है।'

मिरनालिनी खिलखिला कर हँसी—इसका प्रमाण नहीं। मैं तेरी बहिन तो रहूँगो लेकिन सौतिन कभी न बनूंगी। यह मुझ से न होगा।'

मोहनी—'आखिर क्या होगा! इसका कोई न कोई ग्राहक तो होना ही चाहिये। कन्या बिना वर के नहीं रहती। सब ऐसा ही कहते हैं। हां, वर बिना कन्या के रहता है। तुम जोवन भर क्वारी तो न रहोगी।'

मिरनालिनी—'मैं क्वारो नहीं हूँ।'

मोहनी को आश्चर्य हुआ। वह कुछ और ही पूछने को थी कि चची आगई। दोनों को बातों में व्यस्त पाकर हँसी। एक ही आयु एक ही प्रकार का रंग ढंग। आज हो मिली, आज ही ऐसी होगई जैसे जन्म जन्म का साथ रहा हो। अब कुछ खाओ पीओगी भी कि सारा समय गप शप ही में बीतेगा।'

मोहनी—'मां! यह मेरी बहिन हैं।'

चची—'मैंने इनको धर्म की बेटी बनालिया है। तुम दोनों मेरी दाईं बाईं आँखें हो। एक तोता है। दूसरी मैना है। ईश्वर आशीर्बाद दे कि बहिनपना जीवन पर्यन्त बना रहे और तुम्हारा जीवन हँसी खुशी में व्यतीत हो।'

मोहनी—'लेकिन इनको जीवन भरमेरे साथ रहने से इंकार है।'

चाची-'अनसमझ लड़की ! यह मेरे साथ रहेगी और मैं इसे अपनी छाती से लगा रक्खूगी। मुझे कथा वार्ता सुनायेगी। दिन कट जायगा। तू पढ़ी लिखी नहीं है । इससे हिन्दी और संस्कृत सीखले। कुछ न कुछ पढ़ लिख जायगी।'

मोहनी—'तू भी पढ़ लिखले।'

चाची—'मैं पढ़ लिख चुकी। काला अक्षर भैंस बराबर ! बूढ़े तोते ने भी कभी पढ़ा है।'

मिरनालिनी—'उत्कंठा हो तो मैं तुमको भी पढ़ा दूंगी। पन्द्रह दिन में अक्षर आजायेंगे। सोलहवें दिन कबीर साहब की साखी पढ़ सकोगी। फिर रामायण पढ़ना बहुत सरल काम हो जायगा।

चाची—'यह इतना सरल है ?'

मिरनालिनी—'कर देखो ! बहुत सरल काम है। तुमको केवल हिन्दी पढ़ाऊंगी और मोहनी को संस्कृत भी पढ़ाऊंगी ताकि वह गीता पढ़ सके।'

—०—

# छटवाँ प्रकरण

## रामसिंह

खुशी के दिन शीघ्र बीत जाते है। दुख की रात पहाड़ होती है। रामसिंह आया। अपने साथ लड़की को लाया। चाची से मिलाया। उसके बाद मोहनी आई। चाची अकेली थी। अब एक से चार हो गये। चार तत्वों के मिलान का नाम ही दुनिया है।

रामसिंह की चाची का नाम यशोदा था। वह भोली भाली पुराने समय की स्त्री थी। बूढ़ी तो वह थी नहीं, लगभग पैंतीस वर्ष की रही होगी। हां, वह उसी प्रकार की स्त्री थी जैसी पुराने समय में हिन्दुओं में हुआ करती थीं। सीधी सादी। जिसने जो कह दिया, मान लिया। जिसने जो समझा दिया, समझ गई। उसे छक्का पंजा नहीं आता था। और न बहुत बातचीत ही करती थी। गांव के स्त्री पुरुष उसे देवी समझते थे। प्रातः काल जो उसे देख लेता था, समझ जाता था, उस का वह दिन खुशी से बीत जायगा। पति के मृत्यु के बाद वह दो तीन बार बलपुर अवश्य गई थी। नहीं तो विवाह के बाद सारी आयु लखनपुर में ही बीती थी। रामपुर वह अपने भाइयों के घर नहीं जाती थी। उसके भाई मोहनी के मामा प्रायः स्वयं ही आया जाया करते थे। बिचारी मन मार कर अकेली पड़ी रहती थी और घर के काम काज में लगी रहती थी।

अकेले का मरना जीना कुछ नहीं होता। ईश्वर एक अकेला है। जब उसने अकेलेपन से घबराकर अपने बहलाने या व्यस्त रहने के लिये अनेकता की सृष्टि पैदा की तो फिर मनुष्य क्यों अनेकता प्रिय बनता! आखिर वह भी तो उसी की रचना है। जब कोई रिश्तेदार या प्रियजन घर मे आजाया करता था, यशोदा प्रसन्न हो जाया करती थी। मोहनी उसकी आंखों की ज्योति थी लेकिन उसे इतनी समझ थी कि लड़की दूसरे घर की अमानत होती है। और उसको तो किसी न किसी दिन विवाह होकर पति के घर जाना ही पड़ेगा। इस लिए उसके प्रेम का केन्द्र रामसिंह उसका भतीजा भी था। रामसिंह ने कई बार सोचा कि वह बलपुर जाकर रहे। यशोदा ने वहां का जाना पसन्द नहीं किया। वह सिद्धान्त की स्त्री थी। स्वभाव ऐसा ही पाया था कि उसकी जिठानी से उसकी कभी अनबन नहीं होती थी। दोनों एक दूसरे को प्यार

करती थीं लेकिन उसे पति के घर छोड़कर अलग रहना स्वीकार नहीं था। और किसी ने आग्रह भी नहीं किया। वह स्त्री हो कर भी अपनी जमीदारी का काम घर बैठे कर करा लिया करती थी। दो बातों की उसे इच्छा थी कि या तो मोहनी के संतान होने पर उसीसे उसका घर बस जायगा या रामसिंह ने विवाह किया और उसके बालबच्चा होगा तो वह उसी को गोद ले लेगी और वह उसी आशा पर जी रही थी।

लेकिन रामसिंह का अभी तक विवाह नहीं हुआ। राजपूताने में छोटी आयु के बिवाह का रिवाज है। मां बाप ने बहुतेरा चाहा कि उसका विवाह हो जाय मगर उसे इंकार था। यह इंकार क्यों था, इसे कोई जानता नहीं था। चूंकि रामसिंह नेक स्वभाव लड़का था और वह भी अपने मां बाप का इकलौता था, वह उसकी इच्छा को मुख्य समझते थे। यह कारण है कि यशोदा की मुराद पूरी नहीं होने पाई। लेकिन लड़का प्यारा था। वह घूम फिरकर दोनों घरों का चक्कर लगाता रहता था और बुद्धिमान होने के कारण वह दोनों घरों की जमीदारी के प्रबन्ध की देखभाल भी करलिया करता था।'

वह किसी रिस्तेदार के यहां गया था जहां से लौटने पर वह योगिनी को अपने साथ लाया था।

यशोदा खुश थी। उसने लड़की को देखकर यह समझा कि रामसिंह उसे साच समझ कर लाया है। यह भी एक कारण कि वह उस लड़की योगिनी को प्रेम की दृष्टि से देखने लगी थी। रंग रूप में वह मोहनी से कम नहीं थी। चाची दिलसे चाहती थी कि यदि कहीं उसने उसके साथ विवाह कर लिया तो उसे सुगमता से बहू मिल जायगी। फिर भी वह संशय में पड़ गई क्योंकि रामसिंह ने उसे योगिनी बताया और चाची को समझा दिया कि यदि वह जाना चाहे तो उसकी स्वतन्त्रता में बाधा न आने पाये।

उसने बात बात में योगिनी से भेद की बातें पूछनी चाहीं। हां भी उसकी दाल गलती दिखाई न पड़ी। वह असमंजस में पड़ गई। योगिनी की मोहनी के साथ मित्रता होगई! इतना तो हुआ कि उसने अपना नाम बताया लेकिन असलियत का उसकी सहायता से भी पता नहीं लगा।

फिर भी सब लोग प्रसन्न थे और खुशी में उनके दिन रात बीत ने लगे। इस बार रामसिंह साधारण से अधिक चाची के घर ठहरा। केवल एक ही बात ऐसी थी कि जिस से वह अपनी आशा को पुष्ट करती रही।

अन्त में एक दिन रामसिंह ने चाची से घर जाने की आज्ञा चाही और पहिले की तरह योगिनी के आराम के ख्याल की बात कही। चाची की आखें हरसमय उसके बैठने उठने पर रहती थीं लेकिन उसने कभी रामसिंह और योगिनी को एकान्त में बातचीत करते भी नहीं। देखा यह उसके लिए बड़े आश्चर्य का विषय था।

रामसिंह के विदा मांगने पर यशोदा ने कहा—तुम जब भी चाहे चले जाना। ऐसी जल्दी क्यों पड़ी है।"

रामसिंह-'घर से बाहर निकले कई दिन होगये। सब प्रतीक्षा में होंगे। मैं उन्हें चिन्तित नहीं करना चाहता।'

यशोदा—'यदि ऐसी बात हो तो किसी को घर भेजदो। सूचना देआये।'

रामसिंह—'इस की आवश्यकता नहीं है और तुम ऐसा क्यों कह रही हो।'

चाची लज्जित होगई। देर तक सोचती रही कि क्या कहे और क्या न कहे। अन्त में उसने असाधारण साहस से काम लिया। 'रामसिंह तुम जानते हो कि तुम अकेले ही कुल के दीपक हो। विवाह क्यों नहीं कर लेते। मेरा कुल कब तक बच्चों से खाली रहेगा।'

रामसिंह लज्जित हुआ । 'विवाह की बातचीत न करो । तुम मुझको लज्जित करती हो ।'

यशोदा—'लज्जा किस बात की है ।'

रामसिंह—'विवाह करना कराना तुम्हारा कर्त्तव्य है या मेरा ?'

यशोदा—'लेकिन तुम नट खट हो । किसी की सुनते भी हो । बातचीत की गई और तुम घरसे निकल कर चल दिये । फिर लेने के देने पड़ गये । इस कारण कोई जुबान नहीं खोलता । थोड़ा सा संकेत हो जाय और देखो अभी क्षण भर में सब कुछ हुआ जाता है या नहीं ।'

रामसिंह हंसा—'क्या कहीं लड़की तजबीज करली है ?'

यशोदा—'एक नहीं दस ! लड़कियों की कमी कब है !'

रामसिंह-'चाची ! मैं शादी से भला अच्छा ! कौन दस लड़कियों से शादी करे और बला में फंसे । मैं यों ही शादी के नाम से घबराता हूं ।'

यशोदा—'यह तो कहने की बात थी । दस लड़कियों से कौन तुम्हारी शादी करता है । बावलों की तरह बात का बतंगड़ करते हो ।'

रामसिंह—'सच्ची बात कड़ुवी लगती है ।'

यशोदा—'मेरी गोद को कब तक खाली रक्खोगे ?'

रामसिंह—'अभी तक मैं आपका लड़का हूं । ऐसी जल्दी क्यों पड़ी है ?'

यशोदा—'मोहनी की मंगनी हो चुकी । वह जेठ में अपने घर चली जायेगी । बहू आ जायेगी तो घर भर जायगा । कम से कम मुझे अकेले पन के कष्ट से छुटकारा मिलेगा । मैं तुम्हारी मां से कहूँगी कि बहू मेरे पास रहे ।'

रामसिंह—'यदि उसने स्वीकार नहीं किया तो तब की बात कहो ?'

यशोदा—'देखा जायगा। वह मान जायगी। मुझे पूरा विश्वास है।'

रामसिंह—'अब की बार घर हो आने दो, फिर सोचा जायगा।'

यशोदा—'सोचते सोचते वर्षों हो गये।'

रामसिंह—'तो तुम आज इसी समय निर्णय करना चाहती हो, ऐसा सम्भव कब है !'

यशोदा—'तुम से दुखी हो गई।'

रामसिंह 'मुस्कराया ! 'दुखी हो गई हो, तो इस बार थोड़ी देर से तुम्हारे दर्शन के 'लये आऊंगा।'

यशोदा की आंखों से टपटप आंसू निकल पड़े। 'अकेला लड़का इस तरह दिल को ठेस लगाने वाली बातें करे, यह अच्छा नहीं है। तुमको कुछ तो मेरे दिल का पास होना चाहिये।'

रामसिंह—'क्या इसके भी प्रमाण की आवश्यकता है।'

यशोदा–'नहीं तुम आज्ञाकारी संतान हो। मैं मानती हूं। लेकिन इस विषय में व्यर्थ हठ कर रहे हो।'

रामसिंह—'तो फिर करूं क्या ?'

यशोदा—'विवाह की स्वीकृति प्रगट करो। और मैं खुशी से सब कुछ कर लूंगी।'

रामसिंह हंसा –'क्या तुमने सचमुच कोई लड़की तजबीज करली है जो इस जुर्रत के साथ मुझे विवश कर रही हो ?'

यशोदा—'हां, मैंने तजवीज करली है।'

रामसिंह अपनी चची के भावों को जान गया। 'पूछा वह कौन सी ऐसी लड़की है जिसे देखकर तुम्हारी राल टपक पड़ी है। मैं भी तो सुनूं। फिर उसकी सूरत देखूंगा।'

यशोदा—'तुम्हारी योगिनी जिसे तुम सांडिनी पर बिठाकर लाये हो ।'

रामसिंह पहिले तो मुस्कराया-फिर उसकी मुस्कराहट ने हंसने का रूप धारण किया । वह इस जोर से हंसा कि घर गूंज उठा। क्या आश्चर्य कि मोहनी और योगिनी ने भी उसे सुन लिया हो।

उसने कहा—'क्या योगनी ने तुम पर अपना मंत्र फूंका है ?'

यशोदा—'नहीं।'

रामसिंह-'फिर तुमने ऐसी बात किस तरह मुंह से निकाली ?'

यशोदा—'लड़कियों ने कभी विवाह के लिये जुबान खोली है !' तू बाबला हो गया है।'

रामसिंह—'चचो ! मैं तुम्हारा लड़का हूं । लड़के भी ऐसे मामलों के बारे मुंह नहीं खोलते। होश की बातें करो। पहिले तो यह नहीं मालूम कि वह कौन है, कहां की है, न नाम मालुम न निशान ! मां बाप कब ऐसी लड़की के साथ सम्बन्ध पसंद कर लेंगे। दूसरे उसने स्वयं कोई बात नहीं कही। तीसरे जहां तक मैंने उसकी बातों से परिणाम निकाला है, वह अत्यन्त स्वतंत्र स्वभाव वाली समझदार, ज्ञानी ध्यानी है। वह विवाह के विरुद्ध होगी।'

यशोदा—'नाम तो ज्ञात हो गया । उसका नाम मिरनालिनी है और जात की राजपूत है। लड़की है। स्त्री है। स्त्री पति, घर और संतान पर मरती है। यह स्त्री का स्वाभाविक गुण है । मैं स्त्री हूं। स्त्रियों की बातों को पुरुषों की तुलना में अधिक समझती हूं। वह लाख ज्ञानी ध्यानी हो, तुम लाखों में एक हो, कैसे सम्भव है कि वह घृणा करे,। लक्ष्मी घर में आई हुई है । घर में आई हुई लक्ष्मी को कोई समझदार आदमी लात नहीं मारता।'

रामसिंह—'यह सब सच है। लेकिन इस अवसर पर तुम बड़ी गलती पर हो। तुमको धोखा हो रहा है।'

यशोदा—'नहीं, मैं गलती पर नहीं हूँ। तुम गलती कर रहे हो। वह मेरी धर्म की बेटी बन चुकी है और मुझे धर्म की मां समझती है। आखिर यह सम्बन्ध स्थापित करना भी तो किसी दृष्टि से है।'

रामसिंह—'तब नहीं, तो अब तो तुमने गलती की। धर्म की बेटी और धर्म की मातायें प्राय: दुनियां में बनती रहती हैं। इनसे यह परिणाम निकालना कि वह तुम्हारी बहू बनेगी, भूल में दाखिल है।'

यशोदा—'यह मुझ पर छोड़ो।'

रामसिंह—'बहुत अच्छा। स्वीकार है। कर देखो।'

# सातवां प्रकरण

## मिरनालिनी

चची ने मोहनी को अपना भेदी बनाया। रामसिंह की बातें उसे सुनाईं। उससे भी उस सम्मति को पसन्द किया। लेकिन मां से कहा कि मिरनालिनी साधारण लड़की नहीं है। उसका हृदय प्रेम प्रीति से भरा हुआ अवश्य है लेकिन विवाह शादी के विषय में वह पत्थर जैसी कठोर है। ऐसा न हो कि वह कहीं बिगड़ खड़ी हो! फिर वह एक दिन भी यहां न ठहरेगी और मिली मिलाई सहेली हाथ से निकल जायगी।

बात सच्ची थी। यशोदा ने भी उस पर विचार किया। अन्त में मा बेटी ने मिलकर यह सम्मति की कि किसी तरह उसका और रामसिंह का आमना सामना करा दिया जाय। क्या आश्चर्य एक दूसरे के देखने से हार्दिक भाव को विशेष प्रकार के संचालन का अवसर मिले। मोम और घी आग से पिघल जाते हैं।

अभी रामसिंह नहीं गया था। मां का संकेत पाकर मोहनी ने मिरनालिनी से हंसकर कहा—'दादा घर जा रहे हैं। क्या तुम उनसे दो चार बात भी न करोगी ? कौन जाने वह फिर कब आयें। इधर भतीजे को चची ने कहा कि चलते चलाते मिरनालिनी को समझाते जाओ कि वह यहां ही रहे। किसी दूसरी ओर जाने की नीयत न करे।'

दोनों ने स्वीकृति प्रगट की और शिष्टाचार के नियम के अनुसार होना भी ऐसा ही चाहिये।"

मोहनी सुबह के समय मिरनालिनी को साथ लिये हुये रामसिंह से मिलने आई और उसे उसके पास छोड़कर चुपके घर खिसक गई। यशोदा रामसिंह के पास बैठी थी। उसने घर के काम काज का बहाना किया। और वह दोनों अकेले रह गये।

रामसिंह ने मुस्कराकर कहा—'योगिनी जी ! मैं तो मा के देखने के लिये जाता हूं। तुम चची के साथ रहना। यहां तुम्हें किसी प्रकार का कष्ट न होगा।'

योगिनी — 'मैं जानती हूं मां बेटी दोनों की मुझ पर कृपा है।'

रामसिंह—'फिर यहां आराम से रहना। बुद्धिमानों का कथन है जहां प्रेम और आदर किया जाय वहां का रहना अच्छा है। और जहां घृणा और अनादर हो, वहां एक क्षण के लिये भी ठहरना बुरा है।'

योगिनी—'सच है मुझे इन बातों का ख्याल है।'

रामसिंह—'बस मुझे इतना ही कहना था । मैं जब लौटकर आऊंगा तब तुमसे फिर मिलूंगा ।'

योगिनी—'मैं तुम्हारी दया का अहसान मानती हूं ।'

रामसिंह—'ऐसी बात मुंह से न निकालो । मैंने तुम्हारे साथ कोई अहसान नहीं किया ।'

योगिनी-'तुम न होते तो मैं यहां तक कैसे पहुंचती । यह अहसान नहीं तो क्या है !'

रामसिंह—'तुम भूल गईं । तुमने स्वयं कहा था कि यदि मैं न ले चलूंगा तो कोई न कोई ले जायगा ।'

योगिनो—'मैं कुछ नहीं भूलो । तुम साथ लाये हो इसलिये अहसान का काम किया ।"

रामसिंह—'खैर ! इन तकल्लुफों को छोड़ो । क्या मैं तुमसे पूछ सकता हूं कि भविष्य के लिये तुम्हारा क्या बिचार है ?'

योगिनी—'क्यों नहीं, तुमको पूछने का अधिकार है किन्तु इससे पहिले कि मैं उत्तर दूं मैं भी तुमसे पूछना चाहती हूं कि यह प्रश्न तुम क्यों कर रहे हो ?'

रामसिंह—'केवल इसलिये कि यदि कभी और कहीं तुम को मेरी सेवा की आवश्यकता हो तो मैं तुम्हारी सेवा का गर्व प्राप्त कर सकूं । इसके अतिरिक्त और कोई प्रयोजन नहीं है ।'

योगिनी—'मैं इन शब्दों के लिये तुम्हारी कृतज्ञ हूं । डूबने वाले के लिये तिनके का सहारा बहुत होता है । और तुम मुझ पर इतने दयालु हो । जब कभी अवसर होगा मैं तुम्हारी दया से लाभ उठाऊंगी ।'

रामसिंह—'क्या मैं इस समय भी कुछ सेवा कर सकता हूं ?'

योगिनी—'मैं नहीं समझती, इस प्रश्न का क्या उत्तर दूं ।'

रामसिंह ने कमर से एक छोटा सा बटुआ निकाला, जिसमें

दस बीस रुपये रहे होंगे। उन्हें योगिनी के हाथ में दिया। यह तुम्हारे काम आयेंगे, मैं चाहता हूं तुम को कोई कष्ट न हो।'

योगिनी ने बटुआ खोला, रुपये गिने। उन्हें फिर उसमें रखकर उसे लौटा दिया। मुझे रुपये की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। मैं निर्धन अवश्य हूं किन्तु मेरी निर्धनता परवशता नहीं है। जब निर्धनता से परवशता का कष्ट नहीं होता तो आदमी को निर्धन भी नहीं कहा जा सकता।'

रामसिंह—'मुझे खुश करने को इन्हें अपने पास रहने दो।'

योगिनी—'रुपया आपत्ति साथ लाता है। यह आदमी को अधिक आश्रित कर देता है! प्रायः देने वाले और लेने वाले दोनों को बर्बाद भी कर देता है। मैं मा और बहिन दोनों को हिन्दी पढ़ाती हूँ। उनके साथ रोटी खालेती हूँ। आवश्यक्ता पूरी हो जाती है। धन का उद्देश्य केवल आवश्यकता को पूरा करना है। इसलिए मैं इन्हें लौटाती हूं।'

रामसिंह के हृदय में चोट लगी। योगिनी ने भी उसे महसूस किया। सहानुभूति और प्रेम करने वाला हृदय रखती थी। उसे ख्याल था कि उसके किसी काम से रामसिंह के दिल को दुख न हो। वह क्षमा मांगने को थी कि रामसिंह ने आप ही कहा—'देने वाले और लेने वाले दोनों बर्बाद कैसे होते हैं, मैंने इसे नहीं समझा।'

योगिनी—'जो लेने की गरज से लेता है और जो देने की गरज से देता है दोनों का हृदय बैठ जाता है। गरज का सम्मिलित होना मन को मलीन कर देता है! यह तुम समझ सक्ते हो।'

रामसिंह—'न मुझे देने की गरज है न तुम्हें लेने की गरज है। तुम बेगरज हो और मैं बेगरज हूं। अतः इस व्यवहार को अपवित्र नहीं कहा जा सक्ता।'

योगिनी—'फिर क्यों देते हो?'

रामसिंह—'जैसे बच्चे को कोई आदमी फल फूल देता है। यह मन का स्वाभाविक गुण है। न यहां कोई अहसान मानता है न कोई अहसान जताता है।'

योगिनी—'तुम्हारी बच्चों जैसी समझ है। क्या मैं बच्चा हूं।'

रामसिंह—'तुम मुझ से अधिक समझदार हो लेकिन इस अवसर पर तुम्हें बच्चा समझ कर यह भेंट दी है।'

योगिनी—'क्यों और किस प्रयोजन से !'

रामसिंह—'शायद तुमको आवश्यकता पड़े और तुम उस समय चिन्तित न हो सको। यह पेशबन्दी की दृष्टि से है।'

योगिनी—'तुम्हारा व्यवहार सम्मान योग्य है। इंकार करने से यह न समझना कि मैं नीच हूं।'

रामसिंह—'राम राम। तुम कहती क्या हो। मैंने तुम्हारे मन बुद्धि का व्यक्ति आज तक नहीं देखा। यह बात किसी साधु में भी मेरी दृष्टि में नहीं आई। यही कारण है कि तुमको योगिनी कहता हूं। मैं जानता हूँ कि तुमने योग का साधन नहीं किया है लेकिन आचरण में निस्संदेह योगी हो।'

योगिनी हंसी—'क्या तुम योग जानते हो ?'

रामसिंह—'हां, मैं साधन करता हूँ।'

योगिनी—'तब मैं तुम से किसी समय सीखूंगी। इसका ज्ञान मुझे पहिले नहीं था।'

रामसिंह—'मेरा यह भेद किसी पर प्रगट न हो वरन् वह आपत्ति का कारण होगा और तुम्हें भी प्रसन्नता न मिलेगी।'

योगिनी—लेकिन यह बात मेरी समझ में अबतक नहीं आई कि तुमने मुझे अपना भेदी क्यों बनाया। पुरुष स्त्री का विश्वास नहीं करते। स्त्रियों में गुप्त रखने का माद्दा नहीं होता।'

रामसिंह—'मैं भी अल्प आयु हूं और तुम अभी बच्चा ही हो, हम दोनों में कोई ऐसी एकता का गुण है जो दोनों को निर्विघ्न गुथ रहीं है। यह सहानुभूति है। इसके अतिरिक्त तुम्हारे माथे और आँखों में ऐसे लक्षण हैं जो योग सीखने वालों के लिये होने चाहिये।'

योगिनी—'वह क्या हैं ?'

रामसिंह—'चौड़ा माथा और निर्दोष चमकीली ! आखें। यह मैंने अपने गुरू से सुना है। वह कहते हैं कि योग विद्या सबको नहीं आती। इसके लिये विशेष प्रकार की चित्तवृति की आवश्यकता है। जब तक वह जन्म से ही मौजूद न हो, केवल सीखने से योग मे सफलता कठिनाई से होती है।'

योगिनी प्रसन्न हो गई—'यह मेरा सौभाग्य है कि तुम मिल गये। तुम्हारे मेल से मेरा जीवन सुधर जायगा। मुझे तुम्हारी बातों के सुनने से विशेष आनन्द मिलता है। वास्तव में तुम में स्वाभाविक आकर्षण है।'

रामसिंह—'यह कारण है कि मैं तुम्हारी सहायता का इच्छुक रहता हूँ वरन् स्त्री होने के कारण मैं भूल कर भी तुमसे कभी बात न करता।'

योगिनी—'क्या तुम मुझे योग सिखलाओगे ?'

रामसिंह—'मुझे इन्कार नहीं है लेकिन योग जब सीखना हो, गुरु से सीखा जाय। मैं तुम्हारे साथ सदा नहीं रह सकता और न मुझे साहस हो सकता है।'

योगिनी—'क्यों ?'

रामसिंह—'मैं पुरुष हूं। तुम स्त्री हो। हमारे तुम्हारे में साधारण प्रीति रहे। गहरे सम्बन्ध से भय का अंदेशा है।'

योगिनी—'तुम सच कहते हो। मैं स्वयं सावधान हूं और सावधान रहूँगी।'

रामसिंह—'इसकी आवश्यकता भी है।'

योगिनी—'तुमने तो मुझे भेदी बनाया लेकिन मेरे हालात से परिचित नहीं हो।'

रामसिंह—'मैं विलक्षणता का पुजारी नहीं हूं। मैं चाहता तो यह हूं कि गुरु के साथ रहूँ किन्तु उनकी आज्ञा नहीं है गुरु की आज्ञा का पालन योग की पहली श्रेणी है। गुरु ने आज्ञा दे रक्खी है कि किसी के भेद को प्रगट न करो। न किसी का भेद जानने की कोशिश करो अन्यथा योग का साधन न हो सकेगा।'

योगिनी—'क्या तुम अपने गुरु के पास ले चलोगे?'

रामसिंह—'वह स्त्री के नाम से चिढ़ते हैं। जब तक पूछ न लूं कुछ नहीं कह सकता। वाइदा करने की टेव नहीं है।'

योगिनी—'तुमने मुझ पर अहसान किया वरन कौन जानता है मैं किस बला में फंसती। भलाई की नींव जब रक्खी है तो उसको अन्त तक पहुंचा दो। अधूरी न रक्खो।'

रामसिंह—'जो होने वाला है वह स्वयं होता रहता है। तुम्हारे जीवन में ईश्वर का हाथ है, अन्यथा इस आयु में स्त्री होने के कारण तुममें यह समझ बूझ कभी न आती।'

योगिनी—'मैं इसे महसूस करती हूं। अब तुम्हारी ओर से विश्वास है जो कहोगे मैं मानने से इंकार न करूंगी। हां, एक बात है वह तुम्हारे कहने से भी न मानूंगी।'

रामसिंह—'वह क्या है?'

योगिनी हंसी—'तुमको नहीं मालूम है। मां बेटी दोनों की इच्छा है कि तुम्हारे साथ मेरा विवाह करदें। इससे मुझे सदा इंकार रहेगा।'

रामसिंह मुस्कराया। मुझे इस बात का पता है। मैं स्वयं विवाह के नाम से घबराता हूं। इनको अपने हवाई किले बनाने । मेरे मां बाप भी ऐसा ही सोचते रहते हैं। मैं अपना समय

काट रहा हूं। यह परीक्षा है। जब मैं इसमें पूरा उतरूंगा, फिर सदा गुरु के साथ रहूंगा।'

---

# आठवाँ प्रकरण

## यशोदा

रामसिंह चला गया। उसके चले जाने से पहिले घर में उदासी छा जाती थी। इस बार वह हालत नहीं हुई क्योंकि मिरनालिनी अपने साथ विशेष प्रकार की बरकत लाई थी। मोहनी और मिरनालिनी दोनों तोता मैना की तरह चहकती रहती थीं और यशोदा का हृदय उन्हें प्रसन्न देखकर प्रसन्नता से उछलने लग जाता था। जब आदमी की आयु अधिक हो जाती है तो वह हर बात में युवा संतान से आदर, यश और प्रसन्नता लिया करता है। यह कुछ प्रकृति का सिद्धान्त है। भलाई बुराई दोनों प्रकार के मामलों में इसका क्रम चालू हो जाता है। यशोदा बूढ़ी नहीं थी लेकिन पति की मृत्यु और विधवा होने के कारण वह घर की बूढ़ी समझी जाने लगी थी। यों ही उसकी चाल ढाल बुढ़ियों की तरह थी। यह दुनिया के नियम का विचित्र रहस्य है। कोई जवानी में ही बूढ़ा होता है। कोई बूढ़ा होकर भी जवानों की तरह तना रहता है। कोई कोई बूढ़े लड़कों और बच्चों की आदत के देखे जाते हैं। इसी प्रकार कोई कोई बच्चे बचपन ही में बूढ़ों की तरह बातें करते और उसी तरह की चाल ढाल धारण कर लेते हैं। यहाँ यशोदा जवानी में बूढ़ी बन गई थी। रामसिंह और मिरनालिनी बचपन ही में बूढ़ों की तरह योग साधन के आकांक्षी हो गये थे। यह विचित्र बात है। दुनियां सम्भवता का जगत है। यहाँ असम्भव भी सम्भव है और सम्भव असम्भव है।'

रामसिंह चला गया। मिरनालिना हसती हुई उसका रुपयों का बटुआ लाई और यशोदा को देकर कहने लगी—'भाई जी यह रुपया दे गये हैं। तुम चाहे इसे अपने पास रक्खो अथवा जिस तरह चाहो खर्च में लाओ।'

यशोदा ने मुस्कराकर पूछा—'लड़का यह रुपया तुम्हें दे गया है या मुझे ?'

मिरनालिनी ने मुस्कराहट का ध्यान न करके कहा—'चूंकि यह तुम्हारे हाथ में है, इसलिये तुम्हारा है।'

यशोदा—'मैं यह पूछती हूं वह दे किसे गया है ?'

मिरनालिनी—'देने को तो वह मुझे दे गये लेकिन मुझे आवश्यकता नहीं है। तुम इसे रक्खो।'

यशोदा—'जिस की वस्तु है उसके पास रहे तो अच्छी मालुम होती है।'

मिरनालिनी—'बच्चों को जो चीज मिलती है वह मां को दे देते हैं। यह सब का नियम है। मा अपने बच्चों की खजानची भी है और उस खजाने की मालिक भी है।'

यशोदा—'लेकिन यह नियम सबका नहीं है। बहुत बच्चे ऐसे होते हैं जो फल फूल मिठाई पाकर मां को मांगने से भी नहीं देते हैं।'

मिरनालिनी—'मैं ऐसे बच्चों के विरुद्ध ।'

यशोदा—'और यदि मैं न लूं तब ?'

मिरनालिनी—'तब मैं कहूंगी कि तुम में मां के कर्त्तव्य पालन की योग्यता नहीं है और तुम बच्चों के प्रेम का आदर नहीं करती हो।'

यशोदा ने बटुआ ले लिया। 'तुम्हारी अमानत है जो मेरे पास रहेगी।'

मिरनालिनी—'अमानत कैसी ! तुम जिस तरह चाहो अपने काम में लाओ। मैं इस पर अपना अधिकार प्रगट नहीं करती।'

यशोदा—'जिसकी माया उसके साथ। जिसका धन उसका अधिकार।'

मिरनालिनी—'यों कहो कि जिसकी लाठी उसकी भैंस।'

यशोदा—'मेरे स्वभाव में जब्र और सख्ती नहीं है।'

मिरनालिनी—'यह रुपया तुम्हारा है, मेरा नहीं है। मुझे इसकी आवश्यकता नहीं है। बिना आवश्यकता की वस्तु को मैं अपनी सम्पत्ति नहीं समझती।'

यशोदा—'सम्पति तो तुम्हारी है।'

मिरनालिनी—'जो जिसे भोगे, वही उसका वास्तविक मालिक है। लोग बाग, तालाब, कुआं खुदवाते हैं, उन पर उनका क्या अधिकार है। जो उनसे लाभ उठाते हैं वह उन्हीं का है। और उन्हीं के लिये है।"

यशोदा—'वह दान की वस्तु है। मैं दान की वस्तु नहीं लेती।'

मिरनालिनी—'न कैसे लोगी ! जो लेता है वही देता भी है। कुदरत में लेना देना साथ चलता है। क्या तुम दान नहीं देती हो ? यदि देती हो तो फिर तुमको दान लेना भी पड़ेगा। इससे बचाव की सूरत कब है !'

यशोदा—'मैं दान न लूंगी।'

मिरनालिनी—'तो फिर तुम दान दोगी भी नहीं।'

यशोदा—'देने को तो मैं दान दूंगी और देती भी रहती हूँ लेकिन न लेने की आदत है और न लेती हूं।'

मिरनालिनी हंसी '– गलत और नितान्त गलत ! जो देता है और लेता नहीं है, वह दानी होता हुआ अहंकारी है। जो लेता है और देता नहीं वह लोभी और मक्खी चूस है। यह दोनों अधूरे हैं, इनका जीवन कभी पूर्ण न होगा। अपूर्ण के अपूर्ण बने रहेंगे। लेकिन जो लेते हैं और देते हैं वह पूरे इन्सान हैं।'

यशोदा—'ईश्वर देता है और लेता नहीं । क्या वह भी अधूरा है ?'

मिरनालिना—'ऐसा ईश्वर दुनिया में नहीं है । कम से कम न मैंने आंखों देखा न कानों सुना ।'

यशोदा मुस्काई—'तुम योगिनी हो । क्या सचमुच ईश्वर को देख लिया है ?'

मिरनालिनी—'हां, मैंने अपने ईश्वर का दर्शन कर लिया है । तब ही ऐसी बात कहती हूँ ।'

यशोदा—'वह तुम्हें क्या दे गया और क्या ले गया ?'

मिरनालिनी—'वह मुझे अपना जीवन दे गया और मेरा दिल ले गया ।'

सीधी सादी यशोदा रहस्य को कब समझने लगी थी । उसे क्या पता था कि मिरनालिनी क्या कह रही है । उसे आश्चर्य हुआ । कुछ सोच समझकर बोली—'बीबी ! तुम निराली लड़की हो । बेपर की उड़ाता हो । मैं तो अब तक यही सुनती चली आ रही हूँ कि ईश्वर आश्रित और भूका नहीं है । वह सब को पालता है और तुम उसे कंगाल बना रही हो ।'

मिरनालिनी—'ईश्वर कंगाल, भूका और आश्रित है । वह ऐसा न होता तो हम कभी कंगाल, भूके और आश्रित न होते । जैसा वह वैसे हम । तब ही तो मेल मिलता है वरन् फिर हम कहां और ईश्वर कहां ।'

यशोदा—'योगिनी बावली हो गई ! भला बताओ तो सही, ईश्वर कैसे कंगाल, आश्रित और भूका है लेकिन सोच समझ कर कहना । अट सट उत्तर न देना ।'

मिरनालिनी—'तुम्हारी योगिनी बड़ी चतुर है बावली नहीं है । सुनो, ईश्वर के पास सब कुछ है । उसके पास नहीं इच्छा है । निइच्छक वह प्रसिद्ध है, इसलिये आश्रित है । ईश्वर प्रेम का भूका है ।

जो कोई उसे प्रेम देता है मानो वह उसे भोजन पहुंचाता है। वह प्रेम पर मरता है। प्रेम हो और अभी तुम्हारे पास सौ सौ बार चक्कर लगाता फिरेगा। क्या इससे सिद्ध नहीं है कि वह भूका, आश्रित और कंगाल है। ऐसा न होता तो हमको पैदा क्यों करता। कोई बावला तो नहीं है जो बिना प्रयोजन के दुनिया को प्रगट करता। उसमें स्वार्थ ( स्व+अर्थ ) है, इसलिये हम में भी स्वार्थ है। अब सोचो मैं सच कहती हूं कि झूठ कहती हूं।'

यशोदा—"तुम बड़ी चतुर हो। जिभ्या कैंची की तरह फर फर खटखट करती हुई चलती है। तुम्हारा मुकाबला तो कोई पंडित भी नहीं कर सक्ता।"

मिरनालिनी खिलखिला कर हंसी। यशोदा खिसियानी होगई।

मोहनी ने कहा—"और योगिनी से मुकाबला करो। देखा कैसी मुंह की खानी पड़ी।"

यशोदा—"यह शेष नाग की अवतार है। इसकी हजार जिभ्या हैं।"

मोहनी—"देखना अम्मा! मेरी बहिन को नागिनी और सांपिनी न कहो, नहीं तो मैं बिफर जाऊंगी। सरस्वती सावित्री और गायत्री अथवा ब्रह्मानी क्यों नहीं कहती। वही बात इनसे पैदा होती है।"

यशोदा—"शेष नाग क्वारा है। इसलिये ऐसा कहा है सावित्री और गायत्री के पति है। जब उसका बिवाह हो जायगा, तब मैं ऐसा कहने लगूंगी।"

मोहनी "शीघ्रता क्या है! अभी अल्पायु और अल्हड़ है। सदा तो क्वारी न रहेगी। इसने अपने ब्रह्मा को पसन्द करलिया है।"

'तू खूसट हैं। नहीं समझती। दुल्हा भाई आये और बहिन को दुलहिन बना गये। मेरी अब बन आई। मैं इसे कहूंगी भौजाई!

योगी आया, योग सिखाया। योग की उल्टी पट्टी पढ़ा गया। ताक धना धन ! अब कुड़म धुम होगा !"

इस पर तीनों ने मिलकर जोर का कहकहा मारा।

यशोदा—'बहुत अच्छा ! मैं अब योगिनी के योग की परीक्षा लेती हूँ। योगिनी को उत्तर देना कठिन होगा। बीबी योगिनी ! तुमने दान देने वाले को अहंकारी बताया है। राजा बलि दान देता था। दान लेता नहीं था। क्या वह घमंडी था ?'

मिरनालिनी—'तब ही तो बावनजी आये। उसके सिर पर पांव जमाया, पाताल को भेजा और घमंड के सिर को नीचा किया। ईश्वर गर्व प्रहारी कहलाता है। अहंकारी के अहंकार को खाता रहता है। देखो ! वह यहां भी भूका सिद्ध होता है।'

मोहनी—'अम्मा ! अब और आगे चलो। तुम मेरी बहिन से न जीत सकोगी। आखिर यह नौजवान है और तुम बूढ़ी हो। बूढ़ों की मत मारी जाती है। भला वह युवाओं का क्या सामना कर सकेंगे ! वाह बहिन वाह ! ऐसा मारा कि अम्मा चारों खाने चित होकर गिरीं। सारा दाव पेच भूल गई !'

यशोदा—'चल निगोड़ी ! परे हट ! दोनों बहिन मिल बजायें ! मैं किस किस की बात का सामना करूं। कहावत है- एक के लिये दो बहुत होते हैं। तुम दोनों एक जैसी हो। मुंहफट !'

मोहिनी—'अब रंग लाई गिलहरी !

'अभी क्या देखा ! और जुवान खुलवाओ। घड़ी दो में मुरलिया बाजेगी।

यशोदा मुस्कराई। 'भला वह दिन भी तो आये। मैं अपनी आंखों देखूं। तब विश्वास हो।'

मोहनी—'क्या अभी कुछ कमी रह गई है। तेरी आंखें अभी तक नहीं खुलीं।' और मोहनी थिरक थिरक गाने लगी:—

कृष्ण ने बाँसुरी, जब अपनी बजाई न्यारी।
सर के बल नाच उठी, आपही राधा प्यारी॥
श्याम मधुबन में चलो, गोपियां सब साथ रहें।
रासलीला मचे, लोला का सभी साँग रचें॥
गोप और गोपियों का, खेल हो और खेल में खेल।
खेल के रूप में हो, राधा का और कृष्ण का मेल॥
नन्द के घर में बधाई बजे और धूम रहे।
चैन आ जाये यशोदा को, अभी झूम रहे॥
मोहनी देख के मोहन को, बलायें लेगी।
हीरे पन्ने वह निछाबर, में सभी को देगी॥

फिर कहकहे की आवाज गूंज उठी और रामसिंह के चले जाने की उदासी का घर में नाम व निशान तक नहीं रहा। मां बेटी दोनों को विश्वास हो गया कि अब रामसिंह शीघ्र लौटकर आयेगा और यशोदा का घर भर जायगा। दुनियां उम्मेद पर कायम है। मिरनालिनी मन ही मन में मुस्कराती थी।

मनुष्य का हर जगह यही हाल है। भविष्य सदा अंधेरे में रहता है। कोई नहीं जानता, आगे चलकर क्या होगा। सब अपने हवाई किले विचार के जगत में बनाते रहते हैं।

—•—

# नवाँ प्रकरण

## मोहनी

मिरनालिनी ने मोहनी और यशोदा दोनों को पढ़ाना लिखाना शुरू किया। हिन्दी के अक्षर बड़े सरल होते हैं। उसके उच्चारण

भी सरल हैं। माँ बेटी दोनों ने पन्द्रह दिन में बहुत अभ्यास कर लिया जैसा कि मिरनालिनी ने विश्वास दिलाया था, वह कबीर साहब की साखी और तुलसीदास जी की रामायण पढ़ने लगीं। यह हमारी योगिनी के गृहत्याग के जीवन की पहली सफलता थी। अब क्या था, मां बेटी दोनों ही उसके शिष्य होने का दम भरने लगीं।

जब घर के काम काज से अवकाश मिलता, तीनों पुस्तकें ले बैठतीं थी और उनका समय राम चर्चा में हंसी खुशी के साथ कट जाता था। गांव की स्त्रियों ने देखा कि यशोदा के घर में नित्य रामायण की कथा होती है, धीरे धीरे वह भी समय निकाल कर वहां आने लगीं और जब उनको मालुम हुआ कि उन्होंने पन्द्रह दिन में हिन्दी सीख ली है, उन्हें भी पढ़ने का शौक पैदा हुआ! मिरनालिनी से कहने लगी कि हमको भी कुछ सिखा दो। यह तो काम की खोज में थी, सुगमता से अवसर मिल गया और रामपुर की प्रायः युवा और अधेड़ स्त्रियों ने उससे हिन्दी पढ़ना सीख लिया। यह योगिनी के जीवन की दूसरी सफलता थी।

इस तरह कई महीने बीत गये। मोहनी के विवाह के दिन निकट आने लगे। माँ बेटी दोनों दिन गिना करती थीं। अन्त में एक दिन मोहनी का मामा आया और उसने इन सबको लखनपुर ले जाना चाहा क्योंकि वह उसका विवाह अपने घर से करना चाहता था। उसने यशोदा से कहा कि तारासिंह और रामसिंह को एतराज नहीं रहा। वह राजी है कि मोहनी का विवाह मेरे घर से हो। केवल तुम्हारी स्वीकृति की आवश्यकता है। यशोदा ने उत्तर दिया। 'जब वह राजी हैं तो मैं भी राजी हूँ। वह घर के मालिक हैं और तुम भी घर के मालिक हो। मुझे कैसे इंकार हो सकता है।' यह बात निर्णय हो गई। मोहनी का मामा निश्चय करके चला गया और एक दिन नियत कर गया जिस दिन वह

आकर मोहनी, यशोदा को ले जायगा। रामसिंह और तारासिंह भी सपरिवार वहां रहेंगे।

विवाह का विषय सबके लिये लगभग समान रूप से प्रिय है। परिवार वाले और रिश्तेदारों को तो परस्पर को सम्बन्धों के कारण उसकी ओर आकर्षण रहता है। अड़ोसी पड़ोसी अपने और पराये भी उसे दुनिया का हर्ष दायक खेल समझकर खुशी से उसके देखने के लालायत रहते हैं। फिर जिनको उससे निजी सम्बन्ध है उनका तो कहना ही क्या है। उनकी खुशी की कोई सीमा नहीं रहती मोहनी प्रत्यक्ष में तो बेपरवाह दिखाई पड़ती थी किन्तु उनका हृदय, कान और आंख सदा उसी की ओर लगे रहते थे। लड़के या लड़की से हिन्दुओं में कोई किस प्रकार की बातें नहीं की जाती और न उनको सलाह मशवरों में सम्मलित रक्खा जाता, किन्तु फिर भी उनको छोटी छोटी बातों तक का पता रहता है। और वह उस तरह हालात के जानने के इच्छुक रहते हैं जैसे विद्यार्थी अपनी पुस्तक के विषय के एक एक लाइन को अध्ययन की दृष्टि से सामने रखता है।

मामा आया और चला गया। विवाह आगामी जेठ में होना निश्चित हुआ। मोहनी और मिरनालिनी ने सब बातें सुनली और सहेलियों की तरह मां की दृष्टि बचाकर उनमें छेड़ छाड़ होने लगी।

मिरनालिनी–'अब तो तुम्हारा बिवाह ठीक हो गया।'

मोहिनी—'मेरे बाद तुम्हारी बारी है।'

मिरनालिनी—'मेरा उल्लेख न करो। मैं खुश हूं कि तुम ब्याह कर पति के घर जाओगी। केवल थोड़ा सा सम्बन्ध है। महिनों के साथ साथ रहने का जो आनन्द मुझे मिला है वह जाता रहेगा।'

मोहिनी—'इसका ख्याल क्यों है ? तुम तो इसी घर में रहोगी। कभी कभी मिला भेंटना होता रहेगा।'

मिरनालिनी—'तुम कैसे जानती हो ! मैं दुनिया में मुसाफिराना आई हूं। आज यहाँ देख लो। कल कहां रहूँगी, इसका किसी को पता नहीं है।'

मोहनी—'तुम जानकर अनजान बनती हो। तुम्हारा प्रबन्ध भी कुदरत में हो चुका।'

मिरनालिनी—'किस तरह ?'

मोहनी—'अम्मा का ख्याल है कि भाई के साथ तुम्हारा ब्याह कराया जाय।'

मिरनालिनी मुसकराई ! यह ख्याल ही ख्याल है और गलत ख्याल है।

मोहनी—'देखोगी, यह ख्याल बहुत शीघ्र क्रियान्वित होगा। मुझे जाने दो। फिर कहन सुनन आरम्भ होगी और शीघ्र ही प्रबन्ध हो जायगा। मुझे पूरी पूरी जानकारी है। अम्मा रात दिन इसी चिन्ता में रहती है। मैं तो दूसरे के घर जाकर रहूंगी। ईश्वर जाने किस प्रकार मेरा जीवन व्यतीत होगा ? तुम भाग्यशाली हो।'

मिरनालिनी—'क्यों ?'

मोहनी—'तुम अपने मंगेतर को देख चुकी हो। उसकी रग रग से परिचित हो। उसमें प्रेम भी है। मेरी दशा इसके प्रतिकूल है।'

मिरनालिनी—'क्या तुमने दूल्हा को नहीं देखा ?'

मोहनी—'नहीं, ऐसा कभी अवसर नहीं मिला और न रिवाज है। लड़कियां पशुओं की तरह दूसरे व्यक्ति के अर्पण करदी जाती हैं। न देख न भाल न जान न पहिचान ! मुझे यह पसन्द नहीं है। जीवन भर का सम्बन्ध और इस तरह का व्यवहार ! खबर नहीं हिन्दुओं में क्यों कब और किसने ऐसी भोंड़ी रीति प्रचिलित की।'

मिरनालिनी—'मैं सुनती हूँ। पहिले ऐसी रिवाज नहीं थी। कम से कम राजपूत कन्यायें अपने लिये आप वर छांटती थीं। इस

रीति का नाम स्वयम्वर था। अब वह पृथा जाती रही। तुम फिर भी भाग्यशाली हो। समझ बूझ रखती हो अन्यथा राजस्थान में तो पाँच पांच वर्ष की कन्याओं के ब्याहने का रिवाज है।

मोहनी—'यह और भी अत्याचार है। बच्चे क्या समझते हैं कि विवाह का मन्तव्य क्या है। मैं समझदार हुई तो क्या और अन-समझ हुई तो क्या, मुझ से कौन सम्मति लेता है।'

मिरनालिनी —'सम्मति लेता तो तुम क्या करती ?'

मोहनी—'बहिन ! तुमसे हृदय खोलकर कहती हूँ। वास्तव में मुझे यह विवाह गोना पसन्द तो नहीं है लेकिन ना पसन्द भी नहीं है। मैं रात दिन सोच में रहती हूँ। तुम आ गई हो, इसलिये दिल की बात कहती हूं। मुझे यह चिन्ता है कि कौन जाने मैं पति के घर किस प्रकार रहूंगी।'

मिरनालिनी—' यह चिन्ता व्यर्थ है। जब जाओगी, सब भूल जाओगी और प्रेम के सम्बन्ध से इस प्रकार जकड़ जाओगी कि सोचने का नाम तक न लोगी।'

मोहनी—'ईश्वर करे ऐसा ही हो। फिर भी तुम इस प्रकार के अपरिचित सम्बन्ध प्रारम्भ में भयानक प्रतीत होते हैं।'

मिरनालिनी – 'फिर इसका कोई कारण भी तो होगा ?'

मोहनी—'कारण है ! मैंने पति को अब तक देखा नहीं है किन्तु उसके हालात सुन रक्खे हैं। उससे मुझे भय रहता है।'

मिरनालिनी—'मैंने तो सुना है कि तुम्हारा पति अत्यन्त सुन्दर है।'

मोहनी—'सब ऐसा ही कहते हैं और यह ठीक भी है किन्तु सुन्दरता ही तो सब कुछ नहीं हैं। मैं चाहती हूं कि मेरा पति अत्यन्त सदाचारी और बुद्धिमान होता।'

मिरनालिनी—'क्या वह सदाचारी नहीं है ?'

मोहनी—'मैं अपने मुंह से क्या कहूँ ! अभी से शिकायत के शब्द मुंह से निकालना अनुचित है। जहां लोग उसकी सुन्दरता की

प्रशंसा करते हैं साथ ही यह भी कहते हैं कि वह स्वर्ण के घड़े में विष से भरा हुआ है। देखने में अच्छा हुआ तो क्या! दिल का अच्छा नहीं है।'

मिरनालिनी—'यह निस्संदेह खेद की बात है। मुझे इसकी जानकारी नहीं है।'

मोहनी—'सब इसे जानते हैं और जानबूझ कर मुझे उसके अर्पण कर रहे हैं।'

मिरनालिनी—'उसमें क्या ऐब हैं?'

मोहनी—एक बात हो तो कोई कहे, वह जुवारी है, अत्यन्त झूठा है, वचन का पक्का नहीं है, चरित्र का भी अच्छा नहीं है। यह मैंने कई जरियों से सुना है।'

मिरनालिनी—'क्या यह ठीक है?'

मोहनी—'वह अफीम भी बहुत प्रयोग करता है।'

मिरनालिनी—'यह बातें आजकल राजपूतों में साधारण रूप से हैं। इनका इलाज सम्भव है। स्त्री यदि अच्छी हो तो वह अपने पति को सुगमता से राह पर ला सकती है। चिन्ता न करो। तुम चतुर हो। जब जाओगी, तब नई सूझ सूझने लगेगी। उस समय सुधार हो सकेगा।'

मोहिनी—'क्या तुमको निश्चय है कि वह अच्छा आदमी हो जायगा।'

मिरनालिनी—'क्यों नहीं! दुनिया में हर रोग की औषधि है। प्रत्येक अवगुण के सुधार का उपाय है। जो कुछ तुमने कहा है यह केवल कुसंग और कुदैव के कारण से है। तुम थोड़े संभल कर रहना। पुरुष के सामने अपनी कमजोरी को प्रगट न होने देना। उसकी कमजोरियों का पता लगा कर उन्हें दूर करते जाओ और वह ठीक होता जायगा हाँ, यदि कहीं तुम उसके प्रभाव में

कहीं तुम उसके प्रभाव में आ गईं तो फिर इलाज असम्भव होगा।"

मोहनी—"क्या अच्छा होता कि तुम मेरे साथ रहतीं। उस समय मैं तुमसे सम्मति लेती रहती।"

मिरनालिनी—"क्या तुम दिल से चाहती हो कि मैं तुम्हारे साथ रहूँ।"

मोहनी ने ध्यान पूर्वक मिरनालिनी को देखा—"तुम यह प्रश्न क्यों कर रही हो ?"

मिरनालिनी—"इस कारण कि स्त्रियों में पुरुषों की अपेक्षा ईर्षा द्वेष का माद्दा अधिक होता है। कहीं ऐसा न हो कि तुमको मेरी मौजूदगी बुरी लगे।"

मोहनी अपनी बारी पर हँसी। "कहीं तुम को भी तो उसका सौदा नहीं हैं ? लोग कहते है कि वह स्त्रियों को तुरन्त ही अपने काबू में कर लेता है। फिर भी सब उसके अवगुणों को जानकर अपनी अपनी लड़कियां उसे देना चाहते हैं। नहीं बहिन ! मैं तुमको अपनी सौतिन बनाना नहीं चाहती। यह मुझे पसद नहीं होगा।"

मिरनालिनी हसी—"तुम भूल गई। एक दिन तुमने स्वयं ही कहा था कि पुरुष कई विवाह करते हैं और तुम्हें मेरे साथ रहने से कोई दुख न होगा।"

मोहनी—'कहने को तो मैंने हंसी में कह दिया था किन्तु दिल से नहीं चाहती।"

मिरनालिनी—"मैं तुम्हारी अशुभ चिन्तक कभी न बनूंगी। तुम गलती पर हो। मैं विवाह तक नहीं करना चाहती।"

मोहनी—"दादा रामसिंह क्या करेंगे ?"

मिरनालिनी—। 'मैं उनको पिता की दृष्टि से देखती हूँ। अम्मा से न कहना। यह भेद की बात है। तुमने मुझसे अपना भेद नहीं छिपाया। मैं भी तुम्हें अपना भेदज्ञाता बनाती हूँ।"

मोहनी—"फिर क्या करोगी ?"

मिरनालिनी—"जीवन पर्यन्त क्वारी रहूंगी। मेरे लिये व्याहता और क्वारी का शब्द उपयुक्त नहीं है।"—रामसिंह ने मुझे योगिनी कहा है और मैं योगिनी की तरह जीवन व्यतीत करना चाहती हूं।"

मोहनी—'यह अच्छा नहीं है। पीछे तुमको पछताना पड़ेगा।'

मिरनालिनी—"मैं पश्चाताप कर चुकी। अब वह मरहला या श्रेणी भी पार हो गई।"

मोहनी—"यदि यह स्थिति है तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है। तुम मेरे साथ रहो किन्तु विश्वास नहीं है कि स्त्री पुरुष को देखकर ज़ब्त कर सके।

मिरनालिनी—"वक्त पर खुद आप ही इम्तहां हो जायगा।
मेरी सचाई का शाहिद कुल जहां हो जायगा।"

मोहनी—"तुम तो रक्त मांस की नहीं बनी हो। पत्थर का कलेजा लेकर आई हो। तुम्हारे प्रण को सुन कर मुझे डर लगता है।"

मिरनालिनी हंसी—"अब क्यों डरती हो! सौतिन तो मैं तुम्हारी बनती नहीं।"

मोहनी—"अपने लिये नहीं डरती हूं। दादा के लिये डर है। अम्मा को तो पूरी पूरी आशा है कि दादा का विवाह तुम्हारे साथ होगा, घर बसेगा। अम्मा तुमको साथ रक्खेंगी। मैं तुम्हें भावी कहती और तुम ऐसी बेतुकी हांक लगा रही हो।"

मिरनालिनी—"कोई किसी का हाल क्या जानता है। इसके अतिरिक्त मैं अज्ञात लड़की हूँ। किसी को क्या मालुम कि मैं किस कुल से हूँ।"

मोहनी—"क्या तुम्हारा नाम मिरनालिनी नहीं है?"

मिरनालिनी—"नहीं, यह कल्पित नाम है। यह भेद केवल

तुम्हारे कानों के लिए है। दूसरों के लिये नहीं। इसका ध्यान रहे।"

मोहनी –"तुम्हारा असली नाम क्या है ?"

मिरनालिनी—"तुम जानकर क्या करोगी ?"

मोहनी—"जैसे सब कुछ बता दिया, इसे क्यों छिपाती हो।"

मिरनालिनी—"मां बाप का रक्खा हुआ नाम मोती है। मुझे सब मोतीवाई कहते थे।"

मोहनी—"तुम सुडौल और अनमोल मोती हो।"

मिरनालिनी—"मुझे प्रत्यक्ष में मोती कहलो लेकिन मैं टेड़ा मोती हूँ। मेरे हृदय में टेड़पन (कज) और गांठ है, मैं कजदार मोती हूं। उसका प्रमाण मेरे जीवन का कुढ़ंगा पना है।

---

# दसवाँ प्रकरण

## सुजानसिंह

जेठ का महिना आ गया। माहनी का विवाह का समय निकट पहुंच गया। दिन बीतते क्या देर लगती है। 'सुबह होती है शाम होती है, उम्र यों ही तमाम होती है।' यशोदा, मोहनी मामा के घर चली गयीं।। रामसिंह उन्हें देखने आया था। मिरनालिनी को उस समय वहां जाने में संकोच था। उसने यशोदा और मोहनी से कहा कि मुझे इस समय न ले चलो। जब रामसिंह जी अपने परिवार सहित विवाह के अवसर पर आयेंगे मैं भी आ जाऊंगी। इस समय मैं रामसिंह के साथ उनके यहां जाना चाहती हूं। यशोदा यह सुनकर प्रसन्न थी क्योंकि वह अपने ख्याल में मस्त

थी। उसने मना नहीं किया। वह समझ गई कि मिरनालिनी का रामसिंह के साथ जाना व्यर्थ नहीं है। वह तो उधर गये। उन्होंने उधर का रास्ता लिया। और यशोदा के घर की देख भाल का काम चौकीदारों के सुपुर्द किया गया।

रामसिंह मिरनालिनी को अपने घर लाया और मां बाप से उसी हैसियत, नाम और शब्दों से मिला भेटा कराया जो उसने चाची से मिलाते समय प्रयोग किये थे। यहां योगिनी के साथ मिरनालिनी का नाम बढ़ा दिया गया था। इन्हें भी उसी प्रकार का धोखा हुआ। यह दुनियां धोखे का स्थान है। प्रत्येक व्यक्ति यहां धोखे में रहना, रखना और धोखा देना चाहता है। सच्ची बात का कोई विश्वास नहीं करता। और जब सच्ची बात कही जाती है उसकी ओर ध्यान तक नहीं होता। धोखे में आनन्द मिलता होगा, तब तो धोखा खाना हर एक को प्रिय है। हिन्दुओं में एक प्रकार के पकवान का नाम भी धोका है। उसे लोग बडे चाव से खाते हैं। तारासिंह और जोधाबाई उसकी स्त्री दोनों मिरनालिनी को देख कर खुश हो गये। लड़का अधिक आयु का हो चला था। वह समझे कि अपने पसन्द की बहू लाया है। अब विवाह कर लेगा। इस ओर से उन्हें सन्तुष्टि होने लगी। परिणाम यह हुआ कि बिना उसके मां बाप घर बार के जाने हुये उसके बाहरी रंग रूप पर लट्टू हो गये और उसके मन बहलाव में लगे।

रामसिंह ने अवसर पाकर मां बाप की आज्ञा लेकर मिरनालिनी को अपने गुरु स्वरूपानन्द से मिलाया, जो उस स्थान से तीन चार मील दूर पर रहते थे। स्त्रियों के नाम से साधारणतया चिढ़ते थे लेकिन ईश्वर जाने मिरनालिनी के रूप रंग में क्या जादू था कि वह भी उसे देखकर खुश हो गये और खुशी से अपनी चेली बना कर सतसंग की आज्ञा दी। जो दिन बीतता था गुरू उस पर अधिक

दयालु होते जाते थे। एक दिन रामसिंह की उपस्थिति में उससे स्वीकार किया कि मैंने इस दिल व दिमाग का पुरुष भी आज तक नहीं देखा। स्त्रियों का तो कहना ही क्या है।

गुरु के साथ केवल पाँच दिन रहने का अवसर मिला कि मामा के घर से पत्र आया कि सुजान सिंह मोहनी के मंगेतर को ताऊन का रोग हो गया है। यह पत्र रामसिंह के नाम था मोहनी ने मिरनालिनी के नाम अलग पत्र भेजा। वह इस प्रकार दर्द भरा था—

प्यारी बहिन मिरनालिनी !

"तुम वहाँ, मैं यहाँ ! कोई साथ नहीं जिससे दिल का हाल कहूं मुझ पर दुख का पहाड़ टूट पड़ा। ऊपर ईश्वर की दया, नीचे तुम्हारी दुआ। आओ और मुझे धीर बंधाओ। मेरा जी तुम्हारे बिना घबराता है।"

तुम्हारी बहिन
मोहनी

पत्र संक्षेप, विषय विस्तृत ! मिरनालिनी की आंखों में पानी भर आया। रामसिंह और स्वामी सरूपानन्द ने उसकी दशा देखी। पूछा—"क्या बात है ?" रामसिंह ने असली हाल सुना दिया। गुरु ने आज्ञा देदी। जी नहीं मानता तो तुम हो आओ।"

रामसिंह उसे लेकर पहिले घर आया। मिरनालिनी को मोहनी के मामा के घर पहुंचाना चाहा। उसे इंकार हुआ।

रामसिंह ने पूछा—"फिर क्या करोगी ?"

मिरनालिनी ने उत्तर दिया—"मैं मोहनी के मंगेतर के घर जाऊंगी।"

रामसिंह—"दवा जानती हो ?"
मिरनालिनी—"कुछ ऐसी ही।"
रामसिंह—"तो चलो मैं भी तुम्हारे साथ चलूंगा।"

मिरनालिनी—"यह मैं नहीं चाहती। मैं अकेले जाऊंगी। तुम से मैं भेद नहीं छुपाती।"

रामसिंह—"जाओ, मैं सांडिनी का प्रबन्ध करता हूँ। दवा इलाज करके मामा के घर आ जाना। सारवान रास्ता जानता है।"

मिरनालिनी—"और तुम ?"

रामसिंह—"मैं चची के पास जाना चाहता हूँ।"

संक्षेप यह है कि मिरनालिनी ने रामसिंह से सलाह करके भेष बदला। सांडिनी पर बैठी। गांव दूर नहीं था। चार घटे की लगातार तेज चाल से सांडिनी ने उसे मंगेतरा के घर पहुंचा दिया। वहां पर शोक छा रहा था। सुजान सिंह मोहनी का मंगेतरा खाट पर पड़ा हुआ बेदम था। लोग उसकी सांस गिन रहे थे। जीवन की आशा जाती रही थी। उसके आते ही लोगों के हृदय को गति मिली। सारवान ने उन्हें समझाया कि यह राज वैद्य हैं। अल्पायु तो क्या हुआ! बड़े अनुभवी हैं। तारासिंह रामसिंह के पिता ने इनको सुजानसिंह के इलाज को भेजा है। सब चिन्ता में थे। यह मर्दाना भेष में थी। किसी को उसके स्त्री होने का सन्देह तक नहीं हुआ। रोते हुये मा बाप उसके चरणों पर गिरे। महाराज यही घर में एक लड़का है और कुल का दीपक है। यदि जीवित रहा और आपकी दवा काम कर गई तो आप सबको बिना मूल्य मोल ले लेंगे।"

वैद्य ने कहा—"पहिले मुझे रोगी को दिखाओ। पीछे मैं और बातचीत करूंगा। वह अपने घर में ले गये। अभी कुछ दिन शेष था। वैद्य ने सुजान सिंह की नब्ज देखी। उसका दिल भर आया। यह सुजानसिंह वही राजपूत निकला जो मिरनालिनी को रेगिस्तान में लाकर छोड़ गया। वैद्य जब्त न कर सका। उसके नेत्रों से अश्रु

धारा बही। संकेत किया। सुजानसिंह की मां फूल का कटोरा लाई। उसने अपने आंसू उसमें गिराये। लोगों ने समझा इसको इसकी दशा पर दया आ गई है अतः वह रो रहा है। यह किसी और ही ख्यालों में था। वह तो उसके आने से और भी निराश हो गये। उसे दवा की चिन्ता थी। विचित्र समय था। निराशा, प्रेम, रोग बेबसी सब इकठ्ठी हो गई थी। उसके नेत्रों से अश्रुधारा कुछ देर तक बहती रही। जब वह कटोरे में काफी इकठ्ठी हो गई, उसने तुरन्त ही रोगी को पिला दी। आसुओं का अन्दर जाना था कि अचेत दशा में पड़ा हुआ सुजानसिंह चलायमान हुआ। आखें खोल दीं चारों ओर देखने लगा। घर वालों की जान में जान आई। यह विचित्र दवा थी। न किसी ने आंखों देखी न कानों सुनी। दवा था या जादू था।

वैद्य ने रोगी की नब्ज देखी। पूछा कैसी तबियत है? रोगी ने उत्तर दिया—"कमजोरी बहुत है।"

वैद्य—"अब तुम बच गये। घबराओ नहीं। समय नाजुक था। वह टल गया। समय क्या टला सिर से मौत की बला टल गई।"

सुजानसिंह—"मैं तुम्हारा कृतज्ञ हूँ।"

वैद्य—तुमको रामसिंह का कृतज्ञ होना चाहिये जिसने मुझे समय पर भेज दिया। नब्ज गिर चुकी थी दवा काम कर गई। अब तुम सो रहो। प्रातःकाल अच्छे हो जाओगे और एक सप्ताह में स्वास्थ्य स्वयं लौट आयगा।'

सुजानसिंह—"तुम्हारी बोली और सूरत से पता लगता है कि मैंने तुमको कहीं देखा है।"

वैद्य—"देखा होगा! यह कोई निराली बात नहीं है। अभी कल तक यहां रहूंगा। फिर बात चीत कर लेना अब सो रहो।"

वैद्य ने देखा कि सुजानसिंह सोच में पड़ गया। वह चुपके से उठा। बरामदे में उसके आराम के लिए खाट डाल दी गई। वह भोजन करके सो रहा। परिवार की निराशा आशा में बदल गई।

सुजान सिंह का बाप बड़ा आदमी था। उसके पास नौकर चाकर बहुत थे। सम्बन्धियों की संख्या बहुत थी। यह सब शाम के समय बरामदे में बैठकर वैद्य ही की बातचीत करने लगे। कोई कहता था कि यह धनवन्तरि बनकर आया है। कोई उसे अश्वनी कुमार का अवतार कहने लगा। एक ने कहा—"उसने आंसू पिला कर मुर्दे को जिन्दा कर दिया।"

दूसरा बोला—"सम्भव है कटोरे में पहिले से चन्द्रोदय या कोई रस डाल दिया हो और आंसुओं का अनोपान हो।"

तीसरे ने कहा—"मैंने स्वयं अपनी आंखों से देखा कि कोई दवा उसके पास नहीं थी।"

चौथा—"फिर बिना दवा के अच्छा कैसे किया"

पांचवां—"हकीम उसे कहते हैं जो हिकमत करे, उसने हिकमत से काम लिया है। ऐसा व्यक्ति दुनियां में कोई कोई होता है। यह हिकमत में अद्वितीय है।"

सुजानसिंह के बाप जालिम सिंह ने कहा—"जो जीवन दे वह ईश्वर है। इसने सुजानसिंह के प्राण बचाये। जैसे चाहे जैसे बचाये हों, मैं तो उसे ईश्वर ही समझूंगा। उसकी किसी बात में सन्देह न करूंगा।"

एक ने सम्मति दी—"यह सच है लेकिन यदि वैद्य जी से यह पूछ लिया जाय कि उन्होंने रोगी को आंसू क्यों पिलाये और आंसुओं में क्या गुण हैं, तो इसमें कोई हानि नहीं है।"

सबने उसकी राय को पसन्द किया। रोगी की दशा देखने के बाद कल पर इस प्रस्ताव को मुल्तवी रक्खा।

वैद्य सोया हुआ नहीं था। केवल लेट रहा था लोग यह समझे

थे कि वह सो गया है। उसने इनकी सब बातें सुन ली और मन ही मन मुस्कराता रहा।

---

# ग्यारहवाँ प्रकरण

## वैद्यराज

प्रातः काल हुआ। रोगी की दशा न केवल अच्छी थी किन्तु वह प्रसन्न था, शरीर हल्का हो गया था शौच के लिये गया। और खाट पर आकर लेट गया। कमजोरी तो थी ही, थोड़ी देर चुपचाप पड़ा रहा। फिर खाने की इच्छा प्रगट की। जालिमसिंह वैद्यराज के पास दौड़ा आया और रोगी की इच्छा बतलाई। वैद्य ने पूछा,— "उससे पूछो। क्या खाने की इच्छा अधिक है।" उत्तर मिला— "खीर खाने की।" उसने कहा--'खीर बनाओ और आप उसके देखने के लिये भीतर गया।'

रोगी बहुत दुर्बल और दुबला पतला होगया था। उसके पेट और पीठ सिकुड़कर एक हो रहे थे। दोनों की आंखें मिली। वह उसे ध्यान से देखने लगा। उसके मन में दया आई। फिर फूल का कटोरा मंगाया। उसमें अपने आंसू टपकाने शुरु किये। जब कुछ बूंदें इकट्ठी हो गईं, उसने फिर पहिले दिन की तरह उसे पिलादीं। उसमें फिर नये सिरे से परिवर्तन के लक्षण पैदा होने लगे। इतने में खीर बन कर आई। वैद्य ने उसमें से दूध दूध छानकर उससे कहा—"इसे चम्मच से धीरे धीरे पीजाओ।" उसने पी लिया। शरीर में स्फूर्ति आई और साथ ही आराम करने की इच्छा प्रगट की। खाने के

पश्चात् सुरती का आना आवश्यक है । वह लिटा दिया गया औ यह बाहर चला आया । बरामदे में आकर खाट पर बैठ गया ।

जालिम सिंह और उसके रिश्तेदार उसके चारों ओर इकट्ठे हो गये और कृतज्ञता प्रगट करने लगे ।

वैद्य ने कहा—'आरोग्यता का देने वाला ईश्वर है । हकीम केवल उपाय करता है । जहां रोग रहता है वास्तव में इलाज उसी में सम्भव होता है । कुदरत स्वयं विजातीय पदार्थ के निकालने में सहायक रहती है । उपाय इस प्राकृतिक क्रिया को पुष्टि देता है । यदि वैद्य में रोगी के लिये थोड़ी सी भी सहानुभूति है तो इलाज अवश्य होता है और शीघ्र ही दशा बदलती जाती है अन्यथा थोड़ी देर लगती है ।"

जालिमसिंह ने पूछा "क्या कभी आपने पहिले सुजानसिंह को देखा था ?"

वैद्य ने उत्तर दिया—"पहिले से देखने की शर्त लाजिमी नहीं है । सहानुभूति का नियम आंखों के मिलने या केवल सूरत के देखने से आवेश में आता है और दृष्टा और दृश्य दोनों को स्वयं पता लग जाता है कि आया उनके हृदयों में समानता और एकता है या नहीं । यह बिल्कुल साधारण सी बात है । तुमने स्वयं अनुभव किया होगा कि राह में चले जा रहे हैं । कभी स्थिति ऐसी होती है कि लोगों के देखने और उनसे वार्तालाप करने की हार्दिक इच्छा होती है और मनुष्य आप उनकी ओर खिचता है । यह स्वाभाविक आकर्षण है जो पारस्परिक होता है । इसी प्रकार कभी ऐसी दशा होती है कि उनके देखने को जी नहीं चाहता । यहाँ पारस्परिक घृणा रहती है। समानता, सहानुभूति और हार्दिक एकता नहीं होती । ऐसे दृश्यों से रोग बढ़ जाता है क्योंकि घृणा का नियम उसके विजातीय पदार्थ को दृष्टि की राह से रोगी के दिल में प्रवेश करके उसे अधिक बुरा बना देता है । सहानुभूति इसे अधिक अच्छी दशा में लाती है ।"

जालिमसिंह—"सच है। मैं इसे सच मानता हूँ लेकिन आपने उसे आंसू क्यों पिलाये ? क्या वह दवा है ?"

वैद्यराज- "आंख में विष है, आंख में अमृत है। इसमें दोनों प्रकार के गुण हैं। कुदृष्टि मार देती है और शुभ दृष्टि बल देती है। आदमी सुख और प्रेम के भाव के उभार के समय रो देता है और यही दशा दुख व घृणा के समय होती है। यह प्रमाण है कि आंखों में दोनों ही गुण हैं। आंसुओं पर क्या निर्भर है, केवल प्रेम की आंखों से देख लेने पर रोग का नाश होता है।"

जालिमसिंह—"आप इस रहस्य को अच्छी तरह समझते हैं।"

वैद्यराज—"इलाज करने के दुनिया में चार तरीके हैं-१)ख्याल से (२) राग सुनाने से (३) हृदय से (४) दृष्टि से। यह ऊंची श्रेणी के हकीमों का आचरण है। आंख से देख लिया, सहानुभूति का ख्याल किया, हृदय से आरोग्यता की धार को चालू करने का अवसर दे दिया। सिर पर हाथ फेर दिया। प्यार प्रीति की बातें कीं। रोगी में उसी समय परिवर्तन आ गया और रोगी की दशा पलट गई। बीच की श्रेणी के हकीम जड़ी, बूटी, भोजन, शर्बत और भस्मों को शरीर में पहुंचा देते हैं ताकि शरीर में जिस पदार्थ या माद्दा की कमी है, वह उसको पहुंचा कर पूरी करदें। इस इलाज में थोड़ी देर लगती है किन्तु अनुभवी वैद्य, देश, काल, पात्र और घर और रोगी के दोष-कफ, वायु और पित्त को देखकर अवसर और मसलहत के साथ इलाज करता है। इस प्रकार की दवा करने के लिये बहुत जानकारी और अनुभव की आवश्यकता है। यह साधारण काम नहीं है। इलाज का तीसरा तरीका नीची श्रेणी का कहलाता है। उसमें चीर फाड़, जुलाब, खून पहुँचाने, मांस खिलाने, नशीली वस्तुओं के प्रयोग की आवश्यकता रहती है, यह तीन विधियां दवा इलाज करने की हैं। मैंने ऊंची श्रेणी की विधि को अपेक्षा कृत अच्छा समझा है। देवताओं का वैद्य अश्वनी कुमार इसका आवि-

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY PURNADAYAL

ष्कारक है और जर्राही और जड़ी बूटी का आविष्कार धनवन्तरी ऋषि से हुआ है। वह हाथों में हरड़ और जोंक लिये हुये पैदा हुआ था। जनसाधारण का ऐसा ही विश्वास है। हरड़ खिलाकर वह जुलाब दिया करता था और जोंक लगाकर गंदे रक्त को शरीर से निकाल दिया करता था।"

जालिमसिंह "वाह वा! आप कुदरती वैद्य हैं। यह विद्या आपमें पैदायशी और प्राकृतिक देन है। आपने पढ़कर या सीखकर उसे प्राप्त नहीं किया।"

रागी[1] नाड़ी[2] पारखी[3], अरु घोड़े का तंग[4]।
सिखलाये आवें नहीं, उपजें तन के संग॥

इसको मैं जानता हूं लेकिन आसुओं के इलाज के विषय में न मैंने आज तक किसी से सुना न देखा, न जाना न समझा न पूछा! यह निराला उपाय है।"

वैद्यराज—"यह भी इलाज की उच्चकोटि की विधि है। मैंने तुम्हें आंख की शक्ति के बारे में समझा दिया। उसमें विष और अमृत, राग द्वेष, आकर्षण, विकर्षण हर दो प्रकार के प्रभाव रहते हैं। मन में जैसा भाव उभरेगा वह, उसी प्रकार के प्रभाव आँसुओं के साथ लेकर आयेगा। और आंसू अन्दर जाते ही विशेष प्रकार का प्रभाव उत्पन्न कर देंगे।"

"आंसू तेजाब हैं और तेजाब का काम देते हैं। भूमि पर अधिकता के साथ आंसू की बूंदें गिरने दो, वह उभर आयेगी। जैसे भूमि पर नींबू निचोड़ने से जो दशा होती है, यह तुम जानते हो और इसी नियम के अनुसार जहां आंसू अन्दर पहुंचे, वह दिल, जिगर, दिमाग सबको चलायमान कर देते हैं। यह साधारण और सोचने की

---

अर्थ—(१) राग विद्या (२) नब्ज की पहिचान (३) पारखी-जौहरी, तत्व ज्ञाता (४) घोड़े के जीन का भाग।

बात है। हाँ, इधर अब तक मनुष्य का ध्यान नहीं गया, इसलिये इसका ज्ञान नहीं हुआ। मैंने वैद्यक के इतिहास में प्रथम वार इस पर विचार किया और अब तक अपने अनुभव में कभी असफल नहीं हुआ।"

जालिमसिंह—"इसका प्रमाण तो मैंने देख लिया। हाथ कंगन को आरसी कैसी ! वह आंख शरीर के अन्दर विचित्र वस्तु है।"

वैद्यराज—"इसमें संशय ही क्या है ! आंख वालो ! आंखें बड़ी नियामत हैं। मानव शरीर के सूक्ष्म तत्व और सूक्ष्म शक्तियों के अन्दर आंख बीच की हैसियत रखती हैं। सुनो:—

तत्व पांच हैं—आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी। आकाश से शब्द ( आवाज ) उत्पन्न होता है अथवा आकाश का गुण शब्द है। वायु से स्पर्श की उत्पत्ति है जिस का सम्बन्ध छूने से है। अग्नि से रूप का प्राकट्य होता है यह रूप की उत्पत्ति करने वाली है। जल से स्वाद की उत्पत्ति होती है। बिना जल के मिठास और स्वाद कैसा ! और मिट्टी से गंध प्रगट होती है। इस प्रकार पाँच तत्वों से पाँच प्रकार के ज्ञान की उत्पति होती है। यह आँख अग्नि से उत्पन्न होती है। यह जीवन की गर्मी है और बीच वाली है।

ऊपर आकाश और वायु हैं,
नीचे जल और मिट्टी हैं
इनके बीच अग्नि है।

अग्नि में इसलिये ऊपर के तत्वों के गुणों के साथ साथ नीचे के तत्वों का भी गुण शामिल रहता है। यह अग्नि हमारे शरीर में आंख है।"

जालिमसिंह—"यह सब सच है। इसी से अग्नि की स्तुति वेदों में गाई गई है। "अग्नि मीढ़े पुरोहितम्" यह मैं समझता हूं किन्तु आँसू का इससे क्या सम्बन्ध है अब तक इसकी समझ मुझ में नहीं आई।"

वैद्यराज—"अग्नि जब जलती है तब धुआं पैदा होता है। यह अग्नि दो प्रकार के काम करती है। प्रथम सूक्ष्म अंशों को धुयें के रूप में ऊपर फेंकती है और स्थूल अंशों को जलाकर नीचे गिरा देती है। यह तुम को ज्ञात है। ठीक इसी सिद्धान्त के अनुसार मनुष्य के नाभि चक्र में अग्नि का भंडार है। जब उसे गति मिलती है धुआं ऊपर को चढ़कर जमा होकर आंसू के रूप में बरस जाता है। जैसे मेह का पानी खेती के लिये लाभदायक होता है ठीक उसी तरह यह आसू भी रोगी के दिल व दिमाग को शक्ति देते हैं। साथ ही शारीरिक विजातीय पदार्थ ( फासिद माद्दा ) को जलाकर मल के रूप में नीचे की ओर बाहर करती है। यह दोनों काम करती है। रोगी को आँसू इस कारण से दो तरह पर लाभ पहुंचाते हैं।'

जालिमसिंह—"आपने खूब समझाया। फिर भी कमी रह गई।"

वैद्यराज—"कमी तो रहना ही है। जब ज्ञान पूरा हो तो कमी न रहे। हमको केवल आंशिक और एक ओर का ज्ञान होता है। यह कारण है कि समझने में कमी रहती है।"

जालिमसिंह—"यह ज्ञान स्वयं क्या है ?"

वैद्यराज—"ज्ञान अग्नि है, रूप है। इस रूप का ज्ञान दर्शन ( देखने ) से होता है। दर्शन का सम्बन्ध आंखों से है अतः आँख स्वयं ज्ञान है।"

जालिमसिंह को आश्चर्य हुआ। उसके रिस्तेदार भी अचंभित हो गये।

वैद्यराज का कथन दर्शन शास्त्र का अंग धारण करने लगा। इसलिये उसका समझना इनके लिये तनिक कठिन हो गया।

जालिमसिंह ने पूछा—"ज्ञान कितने प्रकार का होता है ?"

वैद्यराज ने उत्तर दिया—"ज्ञान पांच प्रकार का है।"

सुनना, छूना, देखना, चखना, सूंघना।

सुनना छूना ऊपर, चखना सूंघना नीचे और
देखना बीच का।

सुनने का सम्बन्ध कानों से है जो आकाश का गुण है,
छूने का सम्बन्ध त्वचा से है जो वायु का गुण है, } यह ऊपर है
चखने का सम्बन्ध जिभ्या से है जो जल का गुण है
सूंघने का सम्बन्ध नाक से है जो मिट्टी का गुण है } यह नीचे है
और देखने का सम्बन्ध आंख से है } वह बीच का है।

जो अग्नि का गुण है।

ज्ञान दो वस्तुओं के बिल्कुल पास होने से होता है। जब तक दो न हों, तब तक विवेक शक्ति नहीं उभरती। आंख चूंकि बीच की है और सूक्ष्म और स्थूल दोनों पर प्रभाव डालती है इसलिये उसका ज्ञान अधिक विश्वस्त होता है। उसमें शक्ति भी अधिक होती है।"

यह घबरा गये। फिलोस्फी (दर्शन) की समझ सबको नहीं होती अतः यहां तक वार्तालाप के बाद चुप हो रहे।

इतने में रोगी की नींद उचट गई। वह उठ बैठा और वैद्य को देखने की इच्छा प्रगट की।

---

# बारहवाँ प्रकरण

## मिलाप

वैद्य रोगी के पास गया। नब्ज देखी। प्रसन्न हुआ। कहने लगा-'अब तुम अच्छे हो।"

रोगी—"आपकी दया से है।"

"अब कोई भय नहीं है। कमजोरी है दो जो चार दिन में जाती रहेगी।"

"भोजन क्या खाऊं ?"

"जो इच्छा हो। केवल इतना ध्यान रहे कि अपच न होने पावे मैं सरल सा नुस्खा बताये जाता हूँ। हरड़, बहेड़ा और आंवला, इनको बराबर पिसवा कर चूर्ण बनालो। तीसरे चौथे दिन डेढ़ तोला सोते समय फांक लिया करो। फिर कोई शिकायत न रहेगी।"

"आप कौन हैं ?"

"मैं वैद्य हूं।"

"यह तो मैं जानता हूं।"

"फिर क्या पूछते हो ?"

"मुझे विश्वास होता है कि कहीं आपको देखा है।"

देखा होगा ! आदमी जन्म जन्मान्तर की स्मृति चित्त में सुरक्षित रखता है। स्वप्न में ऐसे दृश्य दिखाई आ जाते हैं जिनके पहिले देखने का ख्याल होता है किन्तु विवरण सहित स्मृति नहीं रहती। वह अचंभित हो जाता है।"

"मैंने यह आवाज भी सुनी है।"

"यह भी उसी सिद्धाँन्त के अनुसार है ! इन बातों को छोड़ो। आराम करो ताकि शीघ्र अच्छे हो जाओ। इसी महीने में तुम्हारा विवाह होने वाला है। प्रसन्न रहो।

"तुमको कैसे ज्ञात हुआ ?"

"यह लो ! मुझे रामसिंह तुम्हारी मंगेतरी के भाई ने इलाज के लिये भेजा है। मैं कैसे इसे न जानता ! विवाह कर लेने पर तुम अच्छी तरह स्वस्थ हो जाओगे। विवाह अनेक रोगों का इलाज़ है।'

"तुमने मुझे अपने आंसू पिलाये। क्या यह दवा है ?"

"हां, यह दवा है। आंसू आंख से बहते हुये मन का मैल धो देते हैं। बहुत से लोग अपने आंसुओं को अन्दर ही पी जाते हैं, यह बुरा है। आंसुओं को निकल जाने देना चाहिए। मैंने अपने आंसू

तुमको पिला दिये ! उन्होंने चमत्कार कर दिखाया । तुम अच्छे हो गये । इसी की आवश्यकता थी ।"

"क्या अब दवा न दोगे !"

"नहीं अब अनुकूल और जचा तुला भोजन तुम्हारे लिये दवा का काम करेगा । प्रातः सायं चलो फिरो । खुली वायु में घूमो । दिल में निकृष्ट विचारों को न आने दो । व्यर्थ चिन्ता न किया करो और शीघ्र भले चंगे बन जाओगे ।"

"मैं अच्छा हूं और आपकी कृपा से शीघ्र अच्छा हो जाऊंगा । इसका मुझे विश्वास है किन्तु आपसे बहुत बातें पूछनी हैं ।"

"इसका बहुत अवसर मिलेगा । मैं फिर कभी तुमसे मिलूंगा । अब तो मैं तुम्हारा इलाज करने वाला हकीम हो हो गया हूं ।"

"क्या आप शीघ्र जाइयेगा ?"

यहां रहकर क्या करूंगा ! उद्देश्य इलाज था । मालिक ने दया की । तुम अच्छे हो । वहां रामसिंह आदि चिन्ता में होंगे । बिचारे विवाह के प्रबन्ध में लगे थे । तुम्हारे अचानक की बीमारी ने उन्हें बड़ा बेचैन कर रक्खा है । मेरे जाने से उनको तसल्ली हो जायगी ।"

मैं तो यह चाहता था कि आप दो चार दिन और रहते । आप में प्रेम का आकर्षण है । मेरा हृदय बिना रोक टोक आपकी ओर खिचा रहता है । मैं नहीं जानता यह क्यों है । कभी किसी आदमी के साथ इतना खिचाव नहीं हुआ ।"

"तब ही तो तुम शीघ्र अच्छे हो गये । सहानुभूति के नियम ने प्रभाव पैदा किया । मुझे भी तुम्हारे साथ प्रेम है ।"

"यह कैसे मालुम हो ?"

"मेरी आंखों को ध्यान से देखो !"

सुजानसिंह ने उसकी आंखें देखीं ।

"क्या देखा !"

"कुछ नहीं।"

"फिर देखो और मेरी पुतलियों के अन्दर अपनी आखों को जमाओ ।"

उसने फिर दृष्टि जमाकर उसकी आंखें देखीं।

वैद्य ने पूछा—"अब के कुछ देखा या नहीं !

सुजानसिंह ने उत्तर दिया—"तुम्हारी आंखों के अन्दर अपना रूप देखा ।"

"यही प्रेम का रहस्य है। आँखों में जिसकी सूरत गढ़ जाय, समझलो उसके साथ प्रेम है । और जिसकी न गढ़े समझ लो घृणा है। आंखें शीशे की तरह सूरतों का प्रतिबिम्ब लिया करती हैं। किसी का प्रतिबिम्ब गहरा पड़ता है, किसी का धुंधला ! गहरा टिकाऊ होता है, धुंधला क्षणिक और कमजोर होता है। यह रोने से शीघ्र धुल जाता है, वह नहीं धुलता । यह अन्तर है।"

"मैं इसे क्या समझूं !"

"लगाव आकर्षण, अलगाव घृणा, सबका सम्बन्ध आंखें से है ।"

"क्या इसी से स्मरण शक्ति का भी सम्बन्ध है ?"

"हां, आंखें प्रतिबिम्ब लेने वाली शीशा हैं । इनके अन्दर एक और सूक्ष्म शीशा है जिसे दिल कहते हैं। जो कुछ आँखें देखती हैं, उसे हृदय के सूक्ष्म शक्तिशाली शीशे के समर्पण कर देती है यह प्रति बिम्ब को ले लेता है और समय पाकर उनके प्रभाव या चिन्ह को उभार उभारकर समय पर दिखलाता रहता है । इसी का नाम स्मरण शक्ति है।"

"वाह वैद्य जी वाह ! तुम्हारे तो पेट में दाढ़ी है । अच्छा समझते समझाते हो।"

हां, प्रत्यक्ष में मैं तुमसे छोटा हूं मगर मेरी चित्त वृति और तरह

की है, तुम्हारी और तरह की । फिर भी मेरे और तुम्हारे बीच किसी प्रकार की अंतरीय समता है जिससे पारस्परिक सहानुभूति उत्पन्न होती है और मेरा इलाज इतना शीघ्र प्रभाव कर गया ।"

"क्या जो कुछ आदमी करता, देखता, खाता सुनता है सबका प्रभाव चित्त पर रहता है ?"

"निस्सन्देह ! तब ही तो रोग होता है । बुरे बचन और बुरे कर्म और बुरेविचार से मन में रोग आता है। अच्छे बचन, कर्म औरविचार से सुख मिलता है ।"

"तुम मुझे देखकर रोये क्यों ?"

"ख्याल आया। देह, जल, मिट्टी, वायु और अग्नि से बना है। इसमें मोटाई मिट्टी की है। चेहरे की चमक जल से है। गर्मी अग्नि की, सांस वायु की हैं। यह कम हो गये । मनुष्य बीमार पड़ गया। वह लोग कैसे अज्ञानी हैं जो अस्थायी रूप, शरीर और भोजन पर इतराते हैं और जीवन में बुरी कमाई करते हैं। यह पहिला ख्याल था । दूसरा ख्याल यह था कि तुम आपत्ति में थे । दिल को ठेस लगी। आँखों में आंसू आ गये, रो पड़ा ।"

'और आंसू पिलाकर तुमने मेरे गंदे पदार्थ को धोना चाहा ।'

वैद्य ने सुजानसिंह को गहरी दृष्टि से देखा—'तुम्हारी समझ बूझ अच्छी है ।"

सुजानसिंह ने कहा—तुम पहिले मिले होते, तो बहुत अच्छा होता। तुम्हारी संगत से मैं भिन्न प्रकार का हो गया होता ।"

"और अब

"अब की तरह का प्राणी हूँ ।"

"बहुत अच्छा ! यह संगत मिलेगी और यदि तुम मेरी संगत चाहते हो तो वह प्राप्त होगी। विश्वास रक्खो ।"

"तुमसे क्या छिपाऊं। तुमने मेरी आंख देखली ; उसमें उ सब लोगों के चिन्ह अवश्य होंगे जिनके साथ मैंने दुर्व्यवहार कि है। मैं अच्छा आदमी नहीं हूं।"

"अब कोई चिन्ता न करो। चूंकि मैंने तुम्हारे बाहरी रोग को खो दिया है तो किसी समय अतंरीय रोग का भी इलाज करूंगा। विश्वास रक्खो।"

"तुम्हारा अहसान होगा। तुम मुझे बचा लोगे। मैं बुरा हूँ किन्तु नेकी की समझ रखता हूँ। वैद्य से रोग छिपाना गलती है। इसलिये कहता हूं।"

"वैद्य,गुरु तथा सच्चे हमदर्द से मन का भेद छिपाना न चाहिये। तुमने अच्छा किया जो इतना कह दिया। अब अधिक बातचीत न करो। शाम को फिर मिलूंगा। तब अपनी कहूंगा। और तुम्हारी सुनूंगा। अब सो रहो। तुम अच्छे आदमी हो।"

वैद्य के चित्त में फिर कोमलता आई। आंसू टपकाये। रोगी को पिलाये। वह श्रद्धालु हो गया था। पी गया। लेट रहा और नींद आ गई।"

---

# तेरहवाँ प्रकरण

## मिलाप (लगातार)

घर जो शोक स्थान बना हुआ था, वह हर्ष स्थान हो गया। अच्छे मनुष्यों के चरणों से खैर व बरकत आती है। जहां जाता है प्रसन्नता फैला देता है। वह आनन्द का साक्षात् प्रकाशवान सूर्य है

जिसकी किरणें बिखर कर गर्मी, जीवन और आनन्द की देन सबको बांटती है। वह मोर के समान है। वह जिस वृक्ष पर बैठा, दो चार पंख भूमि पर गिरा दिये। जिसने देखा समझ लिया कि यहां मोर बैठा था। कोई आदमी ऐसे बुरे होते हैं कि जहां पहुंचे वहाँ ही बिगाड़ पैदा कर दिया। कबूतर की वायु स्वास्थ्यप्रद कही जाती है। उल्लू की वायु रोग लाती है। भले आदमी की संगत कल्पित स्वर्ग से लाखों दर्जे बहतर और बुरे आदमी की संगत कल्पित नर्क से करोड़ों दर्जे बुरी है। सच्ची बात तो यह है बुरे से बुरा नर्क मिले किन्तु बुरे आदमी की संगत से पाला न पड़े।

वैद्य अच्छा आदमी था। एक ही दिन के ठहरने में उसने समस्त ग्राम वासियों का दिल अपनी मुट्ठी में कर लिया। वह सब के हृदय के आकर्षण का केन्द्र बन गया। उसकी संगत श्रेष्ठ समझी जाने लगी। जो आया अपने लिये हितकर संकेत और शिक्षा ले गया।

शाम का समय आया। वैद्य रोगी को देखने गया। उसे नींद आ गई थी! नींद आरोग्यता की निशानी है। जब रोग जाने को होता है और देह में दुर्बलता आ जाती है तो नींद का आना लाजिमी है। जालिमसिंह ने जगाना चाहा। इसने मना किया। चुपचाप खाट के पास बैठ गया। वह देर तक खर्राटे लेता रहा। जब आंख खुली, वैद्य को अपने निकट बैठा हुआ देखा।

"आप बहुत देर से यहाँ बैठे हैं। मैं सो गया था।"

"बहुत अच्छा हुआ। मैं तुमको देखने को आया था।"

"आप दो चार दिन और न रहेंगे?"

"नहीं, यदि चाहते हो तो फिर आकर मिलूंगा।"

"कृपा है! यह सिर, देह, मन और प्राण आप ही के है जब कभी आइयेगा, मुझे अत्यन्त खुशी मिलेगी।"

"यदि मेरे आने से खुशी मिलती है तो मैं आ जाऊंगा।"

"मैं सो गया था। नींद में स्वप्न देख रहा था। आपको कई ब... सुनानी हैं।"

"स्वप्न तो स्वप्न ही है। यदि कोई विशेष बात कहनी हो तो कह सकते हो।"

"मैं आप ही का स्वप्न देखता रहा था। आपने स्वप्न में मुझसे कई ऐसी बातें कहीं जो अनुमान में नहीं आतीं।"

"जैसे।"

"जैसे यदि कोई व्यक्ति किसी को हानि पहुँचाये और उसकी सूरत देख ले, तो देखने वाले अपराधी की आंखें अपराध की साक्षी देती हैं क्यों कि सताये हुये का अक्स आंखों पर पड़ जाता है।"

"यह बात ठीक है। यहां तक कि यदि कोई किसी को मार डाले और हत्यारे का पता न लगे तो मारे जाने वाले की आंखों में हत्यारे की सूरत का अक्स स्थिति रहता है। उसके देखने से तुरन्त जानकारी हो सकती है कि हत्यारा कौन है।"

"क्या यह योग्यता हर एक व्यक्ति में है?"

"नहीं, जिस व्यक्ति ने मुर्दों की आंखों के अन्दर अक्स देखने का अभ्यास किया है उसे यह ज्ञान होगा, अन्यथा साधारण रूप से तो लोग मुर्दों के नाम और रूप से डरते हैं। उन्हें कैसे यह ज्ञान होने लगा!"

"रूप के अक्स ग्रहण करने की बात मैं ने आप ही से सुनी है। पहिले कभी नहीं सुना था।"

"अभी! आंख पर क्या निर्भर है, हर सूक्ष्म और स्थूल वस्तु अक्स को ले लेती है। सूक्ष्म में वह गहरा रहता है। स्थूल में धुंधला रहता है। यह गुण स्वयं आकाश में है किन्तु सिवाय योगियों के किसी को इस का ज्ञान नहीं है।"

"क्या आप योगी भी हैं।"

"कुछ योग का साधन अवश्य करता हूँ।"

"दर व दीवार में भी लड़ाई झगड़े का अक्स पड़ता है ?"

"अवश्य पड़ता है लेकिन सिवाय सूक्ष्म दृष्टाओं के कोई देख नहीं सकता।"

"इन बातों का मुझे कैसे विश्वास हो ?"

"इस अंतरीय अक्स को पुराणों में चित्रगुप्त वर्णन किया है। चूंकि प्राय: बुरे बचन, कर्म और विचार चित्त में स्थित होकर उपद्रव मचाते हैं, प्रकृति उनके दूर करने का प्रबन्ध करती है। इसका नाम यम, यमराज या यमदूत है। यम का अर्थ दूर करने, मिटाने, निकालने, लेटने और लय करने के हैं। शारीरिक रोग भी इसी चित्र गुप्त नियम के आधीन है। और पेचिश, पेट का दर्द आदि यम के दूत हैं। तुम इस कारण बीमार हो गये कि शरीर के अन्दर कुकर्मों के कारण गंदे पदार्थ इकठ्ठा हो गये। प्रकृति के यम के नियम को तो अपना काम करना ही था, तुम बीमार पड़ गये। ताऊन के रोग ने आक्रमण किया। अब वह दूषित पदार्थ निकल गया। इसलिये स्वस्थ होने लगे।"

"तो मुझे अपने कर्म से छुटकारा पाने की आशा होनी चाहिए।"

"क्यों नहीं, कर्म स्थायी नहीं होते, अत: उनका दंड भी स्थायी नहीं, कर्म का कानून ठीक रोग के नियम के अनुसार है।"

"धन्य हो ! मेरे लिये भी छुटकारे की आशा है।"

"है और अवश्य है। अब तुम हर पहलू से अच्छे होते जाओगे। जो कुछ तुमने किया हो उसे अब भुलाने की कोशिश करो।"

"जी चाहता है कि मैं अपनी राम कहानी पूरी पूरी आपको सुनादू।"

"इस समय नहीं, दूसरे अवसर पर यदि मिलना आवश्यक हुआ तो सुनूंगा।"

"वैद्य जी ! मैं अफीम बहुत खाता हूँ । उसका प्रयोग चालू रक्खू या छोड़ दूं ?"

"यदि आवश्यकता है तो प्रयोग करो । आवश्यकता न हो तो तुम उसे छोड़ सकते हो ।"

"आप अब किधर जाइयेगा ?"

"इस समय मैं रामसिंह के साथ हूँ ।"

"मेरे विवाह तक उन्हीं के साथ रहोगे ?"

"कह नहीं सकता, तुम चाहते क्या हो ?"

"मैं चाहता हूँ कि विवाह के अवसर पर मुझे दर्शन दो ।"

"बहुत अच्छा ! ऐसा ही होगा । आज तुमसे बहुत बातें कीं । अब चुपके पड़े रहना । आराम की बड़ी आवश्यकता है।"

"मैं आपकी आज्ञा का पालन करूंगा ।"

"तो मुझे अब खुशी से जाने की इजाजत देते हो ?"

सुजानसिंह ने वैद्यराज का हाथ अपने सिर पर रक्खा । फिर दोनों हाथ बांधकर नमस्कार किया । यह विदा होकर बाहर बरामदे में आया । सब लोग उसकी प्रतीक्षा में थे । इसने जालिमसिंह से बिदा मांगी । उसने दो सो रुपये और कुछ कपड़े आदि भेट करना चाहा ।

इसने कहा—"वैद्यक मेरा पेशा नहीं हैं और न इससे मेरी जीविका चलती है । मैं इसे न लूंगा । यह मेरे जीवन के नियम के विरुद्ध है ।"

जालिमसिंह—"मैं कैसे अपनी कृतज्ञता प्रगट करूं ।"

वैद्य—"इसकी तनिक भी आवश्यक्ता नहीं है । मैंने रोगी को कोई दवा भी नहीं दी जिसका बदला लेता ।"

जालिमसिंह—"आपने तो उसे वह वस्तु दी जो दूसरे किसी से सम्भव नहीं थी । हम सब निराश हो चुके थे ।"

वैद्य—"निराश कभी न होना चाहिए । जब लगा सांसा, तब

तक आ.सा ।"

जालिमसिंह—"तो कुछ तो स्वीकार कीजिये ।"

वैद्य—"रोगी की देख भाल काफी हो, वह चिन्ता फिक्र न करे, आमोद प्रमोद का सिलसिला रहे ताकि चित्त प्रसन्न रहे। बस इसी को स्वीकार कीजिये और समझ लीजिये कि मैंने सेवा का हक पा लिया ।"

जालिमसिंह—उसके पांव पर पड़ने लगा। उसने पांव हटा लिया और सब को नमस्कार करके सांडिनी मंगाई। जालिमसिंह ने साड़िनी सवार को कुछ इनाम दिया । दोनों सवार हुये और रातों रात सफर करके उस स्थान पर पहुंचे जहां स्वरूपानन्द जी रहते थे। सवार प्रातः मोहनी के घर गया और सुजानसिंह की आरोग्यता का शुभ समाचार सुनाकर सबको प्रसन्न कर दिया। और रामसिंह को गुरु के पास लाया।

---

# चौदहवाँ प्रकरण

## तारासिंह

रामसिंह एक ओर गया । मिरनालिनी या योगिनी दूसरी ओर गई। पहिले दोनों गुरु के पास गये थे। रामसिंह तो जब कभी जाता था, मा बाप से आज्ञा लेकर जाता था। यह उसका नियम था। मा बाप को उसकी ओर से सन्तुष्टि थी। लड़का जवान था। विवाह नहीं हुआ था। उन्हें विवाह की चिन्ता थी। उदासीन नहीं थे लेकिन विवाह खुशी की नीयत से किया जाता है। लड़के की खुशी मुख्य थी। उस समय वह इन्कार करता था । यह इन्कार वर्षों से था।

वह जबरदस्ती नहीं करना चाहते थे। दोनों ने लड़के को उस विषय में स्वतंत्र छोड़ रक्खा था। जब चाहेगा विवाह कर लेगा। मिरनालिनी को उसके साथ देखकर प्रसन्न हो गये थे कि शायद अब इसे विवाह का ख्याल आया है और कहीं से लड़की लाया है। हिन्दुओं में लड़के व लड़कियों को अपनी पसन्द के अनुसार विवाह करने का अधिकार नहीं है। जातिपांत, कुल, गोत्र आदि का लिहाज करना पड़ता है। फिर भी वह सन्तुष्ट थे। लड़का समझदार और सदाचारी था। वह बिना सोचे समझे हुये कोई काम न करेगा। इसका इन्हें विश्वास था। उन्होंने कभी उसके चरित्र पर टीका टिप्पड़ी करने का अवसर नहीं पाया। मिरनालिनी का घर आना उनकी प्रसन्नता का कारण हुआ था लेकिन यद्यपि वह उनसे हिल मिल गई थी, फिर भी वह उसकी चाल ढाल पर दृष्टि रखते थे। दोनों में से किसी ने भी रामसिंह और मिरनालिनी में लगाव की वह सूरत नहीं देखी जो स्त्री पुरुष के लिये होती है। थोडे ही दिनों में उनका ख्याल निराशा धारण करने लगा। फिर भी चुप थे। मामले को परिस्थितियों के अर्पण कर रक्खा था। उसका गुरु के यहां बिना आज्ञा चले जाना अप्रिय नहीं हुआ मगर लौटने पर मर्दाना भेष बनाकर सुजानसिंह के गांव का रास्ता लेना और इस अवसर पर भी उनकी ओर बेरुखी का व्यवहार करना उनके चौकन्ना करने के लिये पर्याप्त था। जब उन्हें ज्ञात हो गया कि लड़की दो दिन बाद आई और घर जाने के बजाय गुरु के यहां सीधे चली गई, वह मन में अप्रसन्न हुये और स्त्री पुरुष दोनों सोचने लगे।

तारासिंह ने कहा—"यह लड़की कैसी है जिसमें शिष्टाचार का लिहाज नहीं है। तुमसे आज्ञा नहीं ली और चली गई।"

योधाबाई बोली—"अब तक मैं और ही ख्याल में थी किन्तु अब वह बदलता जाता है। यह घर के काम की नहीं है।"

तारासिंह—"प्रत्यक्ष में भली प्रतीत होती है । चंचल भी नहीं है ।"

योधाबाई—"गुण ढंग और समझ बूझ वाली भी है ।"

तारासिंह—"लेकिन रामसिंह को उसके साथ कोई वैसा सम्बन्ध नहीं है जिसकी हमें आशा थी ।"

योधाबाई—"दोनों मित्र हैं और उसी तरह का व्यवहार है जैसे दो समान आयु वालों का आपस में होता है । कहने के लिये वह मर्द है और यह स्त्री है । शेष और बातों में दोनों वैसे ही कोरे हैं जैसे अभी मां के पेट से पैदा हुये हैं ।"

तारासिंह—"किन्तु उनमें प्रेम तो है ।"

योधाबाई—"यह प्रेम इन्द्रिय और शरीर सम्बन्धी प्रतीत नहीं होता । यह सजातियता और मन की अनुकूलता तक प्रतीत होता है । तुम पुरुष हो । इन बातों की कमतर समझ रखते हो।"

तारासिंह—"फिर इनके विवाह का ख्याल निराशा जनक है ।"

योधाबाई—"यही नहीं किन्तु असम्भव है ।"

तारासिंह—"मैंने ऐसा सोचा नहीं था ।"

योधाबाई—"पुरुष हो । तुम क्या सोचोगे । पुरुष एक ओर सोचने वाले हैं । हाँ, स्त्री सहसरूपा, हजारों ओर दृष्टि रखने वाली होती है । मानव वंश 'मनु' और 'शतरूपा' से चला है । उनकी कैफियत केवल उनके नाम पर विचार करने से ज्ञात होती है । मनु एक रुखा था । शतरूपा सौ रुखी थी ।"

तारासिंह—"तो तू बड़ी ज्ञानी ध्यानी है ?"

योधाबाई—"इसका प्रमाण रामसिंह है । उसने मुझ से सोच विचार का और तुम से सादगी का उत्तराधिकार प्राप्त किया है । जो स्थूलता हमारे स्वभाव में है वह उसमें जाकर निखार पर आ गई और वह अपेक्षा कृत अधिक सूक्ष्म स्वभाव वाला हो गया ।"

तारासिंह—"तो क्या विवाह न करेगा ?"

योधाबाई—"सौ मैं पिचहत्तर फासदी आशा नहीं है। बचपन में विवाह हो जाता तो और बात थी।"

तारासिंह—"फिर क्यों नहीं किया ?"

योधाबाई—"भाग्य ! भाग्य के सिवाय और क्या कहा जाय ! मैं तो सदा से कहती आ रही हूँ कि लड़के का विवाह हो जाय। तुमने नहीं माना। यही कहते रहे कि शीघ्रता किस बात की है। आयु पाकर विवाह हो। मैं चुप रही। और अब लेने के देने पड़े।"

तारासिंह—"विवाह करेगा और अवश्य करेगा। उत्पत्ति का नियम प्रकृति की जान है। समझ बूझ आयेगी, तब स्वयं इधर आकर्षित होगा।"

योधाबाई—"देखते चलो। हाथ कंगन को आरसी क्या है।"

तारासिंह—"तू कहती क्या है ! मैं तेरी बात नहीं समझता।"

योधाबाई—"समझोगे कैसे ! तुम मनु हो और वैवस्वत मनु हो। मैं शतरूपा हूँ। तुम शतरूपा होते तो समझते।"

तारासिंह—"तो फिर समझाती क्यों नहीं !"

योधाबाई—"जब तुम समझो तो समझाऊंगी। वैसे क्या मुझे तुम्हारे साथ झगड़ा थोड़े ही मोल लेना है। और यशोदा मोहनी की मां वर्षों से कह रही हैं कि रामसिंह ब्याह दिया जाय। दो भाइयों में अकेला लड़का है। तुम कहते हो सियाना हो जाय।"

तारासिंह—"मतलब की बात क्यों नहीं कहती।"

योधाबाई "आदमी कई प्रकार के होते हैं। एक तो वह जिसमें स्त्री पुरुष की मिली हुई दशा होती है जैसे अर्द्धंगी शिव-आधे पुरुष और आधे स्त्री। दूसरे चतुर्मुखी ब्रह्मा-जो संतान ही की चिन्ता में रहते हैं। तीसरे विष्णु-जो भरण पोषण ही को सब कुछ समझते हैं। यह तीनों उत्पत्ति के नियम के आधीन रहते हैं। ऐसे पुरुषों से संतान चलती है। वह आदमी ही क्या हुआ जो रात

दिन बच्चा पैदा करने की धुनि में रहे। बिष्णु सबसे श्रेष्ठ हैं। थोड़ी संतान हो और उसका पालन पोषण उचित ढंग से होता रहे। इनकी संतान देवता होती है। ब्रह्मा की संतान में जीव जन्तु, सांप, बिच्छू, कनखजूरे आदि सब ही हैं। शिव में स्त्री पुरुष का भाग समान होता है। इस समता का नाम समाधि ( सम=बराबर, धर=धारण करना ) है। समाहत होने के कारण इनकी संतान कुढ़ंगी, सुढ़ंगी, भूत, वैताल, योगी सभी होते हैं। और शिवजी इन से निस्सम्बन्ध रहते हैं।"

तारासिंह हंसा—"आज तू बढ़ चढ़कर बात कर रही है।"

योधाबाई—"बढ़ी चढ़ी तो हमेशा से हूं लेकिन तुम मेरी सुनो भी तो सही ! तुम पति हो। न मानूं तो क्या करूं। स्त्री का जोर पुरुष पर चलता है। जब पुरुष बे परवाह हो तो सिवाय चुप रहने के क्या किया जाय !"

'सूरदास की स्त्री किस पर करे सिंगार !'

तारासिंह—"तो मैं अन्धा हूँ ?"

योधाबाई—"बात सुनी नहीं कि बीच में काट दी। मैंने तो एक मसला सुनाया है।"

तारासिंह—"मैं इन तीनों में से किस प्रकार का पुरुष हूं ?"

योधाबाई—"तुम शिवजी की तरह के हो, जिनकी संतान गणेश और स्वामि कार्तिक आज तक क्वारे चले आते हैं। मुझे सन्देह है रामसिंह योगी हो जायगा, विवाह न करेगा।"

तारासिंह—"मैं शिव हूँ !"

योधाबाई—"तो इसमें सदेह की क्या है। सम्बन्ध में निस्सम्बन्ध और निस्सम्बन्ध में सम्बन्ध यह तुम्हारे जीवन का सिद्धान्त है। संतान की भावी उन्नति तक का ख्याल नहीं है।

तारासिंह ने दो चार क्षण मौन रहकर पूछा—"पुरुष और कितने प्रकार के होते हैं ?"

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY
PURNADAYAL

याधाबाई--"कुछ पुरुष बच्चो जैसे होते हैं। बूढ़े होने पर भ वह बच्चे बने रहते हैं। यह काम के नहीं होते। जैसे सनः सनन्दन सन्तकुमार और सनातन। इनकी तो वही दशा है। चौथे बिल्कुल पुरुष होते हैं जैसे नारद आदि। इनमें स्त्रियों का गुण नहीं होता ! पांचवे जनाने पुरुष होते हैं जो स्त्रियों जैसे काम करते हैं। इनसे स्त्रियों का मेल होता है। यह सदा स्त्री के पुजारी और जनखा होते हैं। केवल वह स्त्रियां इनसे घृणा करती हैं जो प्रेम और पुरुषार्थ का आदर करती हैं।"

तारासिह—"तू किस प्रकार के पुरुष को अच्छा समझती है ?"

योधाबाई हंसी—"मैं तो तुम्हीं को पसन्द करती हूं। तुम आधे पुरुष और आधे स्त्री हो। तुम शिव हो। तुम्हारे साथ मेरी खूब गुजर गई।"

तारासिह—"तो फिर क्या शिकायत है ?"

योधाबाई—"तुम में साथ की साथ थोड़ा सा गुण विष्णु का भी होता तो रामसिंह व्याह गया होता।"

तारासिंह—"पुरुषों के भेद तो तूने बता दिये मगर स्त्रियों के भेद नहीं बताये।"

योधाबाई—"जो विशेषता पुरुषों में है वही और वैसी ही स्त्रियों में भी होती है। जैसे (१) उमा (२) लक्ष्मी (३) गायत्री आदि आदि। इसी से समझ लो। कुछ स्त्रियां भी स्त्री होती हुई मर्दानी होती हैं।"

तारासिंह—"भाई वाह ! अच्छा समझती समझाती है। अब तू चाहती क्या है ?"

योधाबाई—"जीते जो रामसिंह का व्याह हो जाता। आंखों से देख लेती। उसका घर बस जाता। इतनी सी ही इच्छा है। चाहे उसके बाल बच्चां को न देखूं, यद्यपि स्त्री की यह भी इच्छा रहती

है।"

तारासिंह--'मैं रामसिंह से विवाह की छेड़छाड़ करने में लज्जित होता हूँ। उसके गुरु से जाकर कहूँगा। विश्वास है कि वह मान जायेगा। गुरू की आज्ञा न टाल सकेगा।'

योधाबाई—"ऐसा ही करो।"

—o—

# पन्द्रहवां प्रकरण

## स्वरूपानन्द

तारासिंह स्वरूपानन्द के दर्शन को आया। मिरनालिनी मौजूद थी। हंसती हुई मिली। "कहो पिता जी ! कैसे आये !" तारासिंह ने उत्तर दिया—"स्वामी जी के दर्शन के लिये आया हूं।" यह प्रसन्न हुई। गुरु को उनके आने की सूचना दी। उन्होंने उसे अपनी कुटी में बुलाया। पूछा-'क्यों कैसे आना हुआ ?' उसने उत्तर दिया—"किसी विशेष उद्देश्य को लेकर उपस्थित हुआ हूँ।" स्वरूपानन्द समझ गये। आदमी ज्ञानवान थे। फिर प्रश्न किया—"कहो, क्या कहते हो ?"

इसने उत्तर दिया—"एकान्त में निवेदन करूंगा।" मिरनालिनी पास बैठी थी। उठकर चली गई।

स्वरूपानन्द—"लो एकान्त हो गया।"

तारासिंह—"मुझे रामसिंह के बारे में कहना है।"

स्वरूपानन्द—"कहो, क्या कहते हो ?"

तारासिंह—"वह विवाह नहीं करता।"

स्वरूपानन्द—"विवाह शादी का सम्बन्ध मां बाप और घर के

रिस्तेदारों से है। मुझे इन बातों से क्या सम्बन्ध !"

तारासिंह—"आप गुरु हैं। आपका कहना मानेगा।"

स्वरूपानन्द—"सुनो तारासिंह ! तुमसे सच्ची बात कहता हूँ। मैंने विवाह नहीं किया. ब्रह्मचर्य का जीवन भर ख्याल रहा। यह मेरा क्रियात्मक जीवन है। उसके सम्बन्ध में मैं जो कुछ कहूंगा, उसका प्रभाव होगा। यदि प्रतिकूल कहता हूँ तो सुनने वाले के हृदय में प्रभाव न होगा। झूठा आदमी सचाई की पुकार करे वह बुरी बात हैं। उसकी सुनेगा कौन ! मुझे शुरू से स्त्री जाति से घृणा थी। अब तक वही ख्याल है। जब दिल का झुकाव उस ओर न हो तो मैं क्या कहूं, कैसे कहूं और क्यों कहूं। तुम कहो। वह मान जायगा। मुझसे कहलवाओगे तो प्रश्नोत्तर करने लगेगा और मेरा पहलू कमजोर हो जायगा। मेरा तो यह सिद्धान्त है।"

कहता है करता नहीं, सुनी सुनाई बात।
कहे कबीर कुत्ता भया, भूंक भूंक मर जात॥

तारासिंह—"सुनिये महाराज ! हम दो भाई थे। दोनों में एक ही लड़का है। यदि उसका विवाह नहीं होता तो वंश नष्ट हो जायगा। फिर कौन पित्रों को पिंड देगा ! कौन तर्पण करेगा ! श्राद्ध कैसे होगा !"

स्वारूपानन्द—"मैं तो नहीं कहता कि वह विवाह न करे। विवाह करे और शौक से करे। मैं विरोधी नहीं हूं। मुझे केवल इतना ही कहना है जितना कि उसके साथ सम्बन्ध है।"

तारासिंह—"इस ओर उसका ख्याल नहीं है।"

स्वरूपानन्द—"तो मैं कैसे ख्याल दिलाऊं। मैं तो अपने अमल (क्रियात्मक होने की साक्षात् मूर्ति बनकर दुनियां को दिखाना चाहता हूँ। मानों मैंने कहा कि रामसिंह विवाह करो और उसने उलट कर उत्तर दिया कि आपने क्यों नहीं किया। तब की कहो ! मेरा कहना सुनना व्यर्थ होगा।'

तारासिंह—"फिर कौन कहे ?"

स्वरूपानन्द—"तुम कहो, उसकी मा कहे, चचो कहे, रिस्तेदार कहें। उनका अधिकार है और यह उनका कर्त्तव्य भी है।"

तारासिंह—'अच्छा ऐसा ही करूंगा। आपकी आज्ञा सिर पर!'

स्वरूपानन्द—"यह तुम्हारा काम है मेरा काम नहीं हैं।"

तारासिंह–"मिरनालिनी अच्छी लड़की प्रतीत होती है। अचानक रामसिंह उसे लाया है। यदि कहीं इसी लड़की से उसका मेल मिल जाता तो अच्छी बात थी। कन्या की खाज के झंझट से बच जाता।"

स्वरूपानन्द जी हंसे—"जब मैं रामसिंह से कहते हुये कतराता हूँ तो इस लड़की से कैसे कहूँ ? मेरा उत्तर स्पष्ट है। मैं अपने मुंह से कुछ न कहूँगा। हां, उसे बुला देता हूं। तुम स्वयं उससे निबट लो।"

स्वरूपानन्द ने आवाज दी। मिरनालिनी आ पहुंची। पूछा–"क्या आज्ञा है ?"

महात्मा ने कहा–"यह तुम से कुछ कहना चाहते हैं।"

मिरनालिनी–"कहिये पिता जी ! मैं ध्यान पूर्वक आपकी बात सुनूंगी।"

तारासिंह—"मानेगी भी या केवल सुनने ही को तत्पर है ?"

मिरनालिनी—"बिना सुने हुये कोई कैसे मानेगा ! और कोई उसे कैसे मनवायेगा।"

तारासिंह—"मेरा और मेरी स्त्री का ख्याल है कि तुझे अपनी लड़की बनायें।"

मिरनालिनी—"मैं पहिले ही से आपकी लड़की बनी हुई हूं। लड़की न होती तो आपको पिताजी कैसे कहती !"

तारासिंह—"यह नहीं।"

मिरनालिनी—"फिर क्या ?"

तारासिंह—"मेरी स्त्री तुझे बहू बनाना चाहती है। बहू बेटी

की एक ही हैसियत है ।"

मिरनालिनी—"लेकिन बहिन भाई के सम्बन्ध अलग होते हैं। आप मुझे क्यों बहू बनाओगे ?"

तारासिंह—"संतान होगी ।"

मिरनालिनी—"संतान से क्या होगा ?"

तारासिंह—"घर बसेगा ।"

मिरनालिनी—"फिर ?"

तारासिंह—"तू पोते परपोते वाली होगी, वंश चलेगा। नाम होगा ।"

मिरनालिनी—"फिर क्या होगा ?"

तारासिंह—"दादी, नाना कहलायेगी। मान होगा सब तेरे पांव पड़ेंगे ।"

मिरनालिनी—"फिर ?"

तारासिंह उकता गया। बार बार के सवाल सुनने की उसे आदत नहीं थी। फिर अल्पायु लड़की की जुबान से। समझा यह हठीली है। फिर जब्त करके उत्तर दिया। हरी भरी होकर मरेगी। संतान तेरा श्राद्ध तर्पण करेगी। लोक सुधर जायगा। परलोक बनेगा। एक हाथ सोने का, एक हाथ चांदी का। यही सौभाग्य कहलाता है। ऐसा भाग्य किसका है !"

मिरनालिनी—"इसी मरने के लिये आप मुझे बहू बनाना चाहते हैं ! अब आप ही सोचिये। मरने और जान देने के लिये कौन राजी होने लगा !"

मैं न मरूं मरे संसारा। मुझे तो मिला जिलावन हारा ॥

तारासिंह निरोत्तर हो गया। जुबान बंद ! होश ठिकाने। बुद्धि गुम !

स्वरूपानन्द ने कहा—"देख लिया। मेरे सामने बातचीत करने का

यह परिणाम हुआ और तुम कहते हो कि इसे विवाह के लिये आकर्षित करो। यही उत्तर मुझे भी मिलता। इसलिये मैं ऐसे प्रश्न नहीं करता। बहतर है रामसिंह के विषय में मेरी जुबान न खुलवाओ। मिरनालिनी तो खैर योगिनी है। पता नहीं किस जाति की है। मैंने पूछा तक नहीं। अपने लड़के को स्वयं समझाओ बुझाओ, दुनिया का ऐसा ही नियम है !"

नमस्कार करके उसने चुपचाप घर का रास्ता लिया। योधाबाई को सारा हाल कह सुनाया। और कई दिनों के लिये दोनों की जुबान बन्द रही।

—०—

# सोहलवाँ प्रकरण

## कुड़म धुम

कुड़म धुम ! जेठ का महीना आ गया।

(१) अषाढ़—आड़ की आस (२) सावन—फुहार (३) भादों—मूसलाधार (४) क्वार—क्वारा पन (५) कातिक—काया का ताकना, देह की देख भाल (६) अगहन—अघहरन, हानिका सुधार (७) पूस—पोसना पालना (तन व भोजन का पक्कापन) माघ—मापने के यंत्र का घनापन ( मा-मापना, घा-घनापन ), बुद्धि के पैमाने का पक्कापन (९) फागुन--फाल्गुन, लगुन या सम्बन्ध के फलफूल की अभि व्यक्ति (१०) चैत-चेतना, होशियार होना, दुनिया के परिश्रम के योग्य बनना (११) बैसाख—साख वाला बनना (१२) जेठ—जेठा पन और बड़प्पन का प्राप्त करना, विवाह करना, राजा बनना।

यह बारह श्रेणियाँ हैं जो बारह नाम से प्रगट को जाती हैं सूर्य जीवन का भंडार है । बारह राशियों में चक्कर लगाता रहत है ।

शिव भगवान ज्ञान के चमकते हुये सूर्य्य हैं । द्वादश जोतिलिंग (बारह प्रकाश के चिन्ह) की सूरत में चक्कर लगाया करते हैं ।

शक्ति प्रकृति की ताकत है । द्वादश भैरवी चक्र में घूमती रहतो है । और भी इसी प्रकार ।

कुड़म धुम ! सुजानसिंह पूर्ण स्वस्थ हो गया । जिसने आंसू पिया है वह कैसे स्वस्थ न होगा ! खून, आंसू, पसीना सब में दवा का गुण होता है । और दवा तो सब ही हैं । माँस, हड्डी, मज्जा, धातु सब अपना अलग अलग गुण रखते हैं । उसके स्वास्थ्य की खुशी में उत्सव मनाये गये । बाजे बजे । दावतों का प्रबन्ध हुआ । दूर और निकट के महमान आये ।

उसी समय में राजपूताने की रिवाज के अनुसार मोहनी का मामा रिश्तेदार, पुरोहित और दूसरे सेवादार साथियों को साथ लिये जालिमसिंह के घर पहुंचा और नारियल भेट करने की रीति पूरी की । दोनों ओर के पंडितों ने मिलकर सुजानसिंह का तिलक किया और हैसियत के अनुसार कपड़े, बर्तन, वस्त्र, रुपया और सोने चाँदी में मढ़ी हुई हल्दी, सुपारी और नारियल आदि भेट दिये । विवाह की तिथि नियत की गई और वर की लगन पड़ी । जब तक लगन आने का समय रहता है तब तक वर और कन्या दोनों को प्रतिदिन तेल और हल्दी का उबटन मला जाता है । सिवाय एक दिन के पानी से नहाना मना है । जिस दिन दुल्हा पानी से नहाता है वही नहाया हुआ पानी स्त्रियां मिट्टी के बरतन में रख लेती हैं । और उसी दिन बारात दुलहिन के बाप के घर के लिये प्रस्थान करती है और बारात के स्वागत से पहिले नाई यह नहाया हुआ पानी ले जाकर देता है । उसी पानी से उस दिन विवाह से पहिले कन्या को स्नान कराया

जाता है : तब सज धज कर मंडप में विवाह के लिये आती है। यह रिवाज हिन्दुओं में सदा से है। पानी के इस बर्तन का नाम बराइन की हांड़ी है। इसके आने से कन्या के पिता को बारात के आने की सूचना मिलती है और उसके विवाह की तयारी करने लगता है।

दोनों जगह लगन धराई गई। मोहनी के मामा के घर रिश्तेदारों का जमघट इकठ्ठा हो गया। मोहनी अपनी मां के सहित सबसे पहिले पहुँच गई थी। रामसिंह तारासिंह और योधाबाई भी आ गये थे। मोहनी ने यशोदा से कहा कि मिरनालिनी नहीं आई। उसका आना आवश्यक है। उसने रामसिंह से कहा कि किसी तरह मिरनालिनी को बुलाना चाहिये। रामसिंह ने टालटूल की। मा बाप की अप्रसन्नता का बहाना किया क्योंकि उन दोनों को मिरनालिनी की अशिष्टता की शिकायत थी। यशोदा ने एक नहीं सुनी। त्रिया, बाल और राज हठ दुनिया में प्रसिद्ध हैं। बाल हठ और राज हठ का तो इलाज भी है। त्रिया हठ का इलाज नहीं है। रामसिंह फिर भी राजी नहीं हुआ क्योंकि स्वभाव और शिष्टाचार के कारण वह मा बाप के विरुद्ध काम करते हुए डरता था। विवश मोहनी के मामा ने अपनी ओर से गुरु स्थान पर सांडिनी भेजी ताकि उसे जाकर ले आये।

गुरु और चेली दोनों बैठे बातें कर रहे थे। स्वरूपानन्द मिरनालिनी से बहुत प्रसन्न थे। उसने जिस तरह तारासिंह को निरोत्तर किया था, वह घटना उनके प्रसन्न करने को काफी थी। उनमें ज्ञान ध्यान की चर्चा हुआ करती थी। सांडिनी सवार पहुंचा। जुबानी संदेशा सुना। मोहनी का पत्र सामने रक्खा। उसने पढ़ा। लिखा था:--

"प्यारी बहिन !

सब कोई आया, तुम नहीं आईं, यह क्या किया ! क्या कहा था और क्या कर रही हो। मैं एक न मानूंगी।

सांडिनी कुत्ते की चाल गई है। तुम बिल्ली की चाल आओ।

खाना वहां खा रही हो तो पानी यहां आकर पीओ। मेरी खुशी बिना तुम्हारे आये पूरी न होगी। इसका ख्याल रहे। दादा रामसिंह कहते हैं कि तुम योग का साधन करती हो। अभी बहुत उम्र है। योग साधन के लिये जीवन पड़ा है। अम्मा अप्रसन्न है। आज दादा से झगड़ बैठीं। मामा ने सांडिनी भेजी है। यदि मुझे बहिन कहती, समझती, मानती और जानती हो तो इस अवसर पर अवश्य आ जाओ। मैं खुश हूँगी और समझूंगी कि मुझे जान दी है और वही उसकी रक्षा करेगी।

काँटों में न हो अगर उलझना।
थोड़ा लिखना बहुत समझना।।

तुम्हारी छोटी बहिन
मोहनी

मिरनालिनी ने पत्र पढ़कर गुरु के सामने रख दिया।" उन्होंने पढ़ा। मुस्कराये—'पति की जान बचाई। अब पतिनी की रक्षा का भार सिर पर लो। यह दुनिया की रीति है। उंगली पकड़ कर कंधे पर हाथ डालती है। मिट्टी कहती है मुझे जरा छू देखो। जिसने हाथ लगाया, मिट्टी में मिला। मिरनालिनी ने पूछा—"क्या फिर न जाऊँ ?" गुरु ने उत्तर दिया—"मैं यह नहीं कहता, जाओ, अवश्य जाओ। जाना पड़ेगा। यह पत्र चेतावनी है। भाषा स्पष्ट बता रही है कि मोहनी मानने वाली लड़की नहीं है। इस सांडिनी सवार के लौट जाने पर और सवार आयेंगे। अच्छा है तुम इसी समय चलदो।"

स्वरूपानन्द ने सांडिनी सवार को खिलाया पिलाया। सांडिनी ने वृक्षों के पत्ते खाकर अपनी तृप्ति की। थोड़ी देर आराम किया, मिरनालिनी सांडिनी पर चढ़ बैठी। वह हवा हुई और देखते देखते यह जा वह जा, दृष्टि से ओझल हो गई और घन्टों में ही मोहनी के मामा के घर पहुँची।

सांडिनी ने अभी, भूमि पर घुटने टेके ही थे कि दुल्हिन के बाप के घर पर नगाड़े पर चोट पड़ी। कुड़मधुम ! कुडमधुम !! कुडमधुम !!! यशोदा ने शोर मचाया । मेरी धर्म की बेटी मिरनालिनी आ गई। सबने शोर मचाया मिरनालिनी आ गई। चारों ओर से यही आवाज गूंज उठी। जो परिचित थे, खुश हुये। यहां तक कि तारासिंह और योधाबाई का माथा भी खुशी से दमक उठा। जो अपरिचित थे पूछने लगे, यह मिरनालिनी कौन है जिसके आने से इतना हर्ष मनाया जा रहा है। उत्तर कौन देता है । बच्चों के शोर के सामने किसे बोलने की ताब थी । हुल्लड़ मच गया । मिरनालिनी आ गई। मिरनालिनी आ गई।

यह नीचे उतरी। स्त्रियाँ अन्दर ले गईं। जाते ही यशोदा इसके गले से चिपट गईं। "मेरी बेटी आ गई" स्त्रियों के अनुसार आंसुओं के मोती उस पर निछावर किये । मोहनी चुपचाप लगन चढ़ने के कारण कौने में छुपी बैठी थी। झपट कर उठी, उससे लिपट गई। बहिन आई ! बहिन आई !! कहां की बहिन ! किसकी बेटी ! किसी की समझ में नहीं आया कि यह बेटी बहिन किस आकाश से उतरी है। यह रहस्य गुप्त रह गया । किसी को पता तक नहीं लगा कि यह कौन है और किस रिस्ते से बहिन बेटी है । यह रहस्य गुप्त रह गया। पता तक नहीं लगा कि यह कौन है।

चलते समय स्वरूपानन्द ने प्रशाद रूप में बतासों की पोटली साथ रख दी थी । जब मेल मिलाप से अवकाश मिला, उसने सब लड़कियों में उन्हें बांट दिया । मिरनालिनी आ गई। बच्चे इस तरह शोर करते हुये दौड़े । गांव भर के बच्चों को सूचना दी। वह आये बतासे लेते हुए उसे घेर लिया। अभी तक तो यह शोर मामा के घर ही तक सीमित था। अब सारे गांव में गूंज उठा।

घंटों बाद यह शोर कम हुआ। मोहनी उसे पकड़कर कौने में ले गई। किसी ने उससे यह भी तो नहीं पूछा कि दूर से आ रही है, भूकी प्यासी होगी। वह भी अपने को भूल गई।

मोहनी ने कहा "खूब आई ?"

मिरनालिनी—"आता न तो क्या करती !"

मोहनी—"चलो, परे हटो। यह चोचले मुझे नहीं भाते। बुलाई न गई होती तो कभी न आती।"

मिरनालिनी—"यह नियम है जब आम बौराते हैं तब कोयल कू कू करती हुई आती है। बादल को देखकर मोर नाचते और पपीहा पी पी करते हैं। तुम आम और मेह हो। मैं कोयल, पपीहा और मोर हूं।"

मोहनी—"कोयल तो ठीक है लेकिन पपीहा और मोर गलत है। पपीहा और मोरनी क्यों नहीं बनती हो ?"

मिरनालिनी—"जो बनना था बन गई। अब दोबारा क्या बनूं।"

मोहनी—"मैं समझ गई, तुम मर्द बनकर गई थी। इसलिये मोर और पपीहा का शब्द जुबान पर आया।"

मिरनालिनी—"तुमसे किसने कहा ?"

मोहनी—"दादा, अम्मा से चुपके चुपके कह रहे थे। मैंने सुन लिया।"

मिरनालिनी—"बुरा किया, कहना नहीं था।"

मोहनी—"अच्छा या बुरा हुआ, यह मैं नहीं जानती, अजीब हो ! तुम मर्द बनकर गई थीं अन्यथा मुझे कुढ़ना पड़ता।"

मिरनालिनी—"क्यों ?"

मोहनी—"यह न पूछो। फिर बताऊंगी।"

इतने में कुड़मधुम की आवाज हुई। बारात आ गई।

——oo——

# अठारहवाँ प्रकरण

## विवाह

मनुष्य के जीवन में विवाह का उत्सव शायद सबसे अधिक मुख्य है। विवाह करना यों तो प्राकृतिक स्वभाव है और यह प्राकृतिक स्वभाव अपने निश्चयात्मक प्रभाव और परिणाम उत्पन्न किये बिना नहीं रहता। जोड़े का मिलना संतान उत्पत्ति की दृष्टि से लाजिमी है। ऐसा तो होता ही है। लेकिन जिस ढंग में मनुष्य ने शिष्टाचार, सदाचार, धर्म और विश्वास की दृष्टि से विवाह के रस्म करने कराने को आरम्भ किया, उसकी जड़ में बहुत बड़ी जिम्मेदारी का ख्याल दिलाया गया है।'

पहिले और पीछे चाहे कुछ हो, विवाह के समय दुलहा और दुलहिन को सजाकर राजा और रानी बनाया जाता है और उनके साथ व्यवहार भी वैसा ही किया जाता है। वर कन्या के लिये बारात की फौज सुसज्जित होकर चलना मानो गढ़ जीतने को जाना है। जिन जिन रस्मों के ढंग पर वर और कन्या का गठ बन्धन है उन पर विचार करने से पता चलता है कि पुराने समय के लोग इसे सचमुच मानव विजय की दृष्टि से देखते थे।

स्त्री जायदाद है क्योंकि वह क्षेत्र (खेत) है। पुरुष जायदाद वाला है क्योंकि वह उसमें बीज डालता है। जायदाद परिश्रम से प्राप्त की जाती है इसलिये वह स्त्री को भी जायदाद समझते थे। और वैसा ही उसके साथ व्यवहार करते थे।

जो कुछ हो, जोड़ा बांधने के प्राकृतिक भावना का वर्णन सदाचार की जिम्मेदारी की दृष्टि से किया है। और इस गठ बंधन को धर्म का पद दे दिया है जिसके सम्मान का ध्यान लगभग सब लोग करते हैं।

कुड़मधुम की आवाज कानों में आई । नाई बरायन की हांडी लाया । मोहनी को दुलहा के स्नान किये हुये जल से स्नान कराया गया । स्त्रियां उसे सवारने शृंगार ने लगीं । पुरुष बारात के स्वागत के लिये गये और अपने दरवाजे की पूजा का रस्म करने के बाद उसे जनवांसा दिया गया ।

विवाह ज्योतिषी से महूरत पूछ कर होता है । रात के समय महूरत था । दुल्हा दुलहिन सजे सजाये हुये मंडप के नीचे बिठाये गये । ऋषि, देवता ब्राह्मण, सगोत्री, और सब ग्राम निवासी इकठ्ठा हुये । बाहर कुड़मधुम कुड़मधुम नकारा बज रहा था जो वास्तव में विवाह की घोषणा का रस्म था । अन्दर मंडप था । बारात तथा गांव वालों का समूह साक्षियों की हैसियत में मौजूद था । यज्ञ किया गया । वेद मंत्र पढ़े गये । फिर वर व कन्या ने सात बार मंडप के चारों ओर फेरे फिर कर पारस्परिक सम्बन्ध के कायम किये जाने की रस्म को प्रगट किया । साथियों की मौजूदगी में पारस्परिक शर्तों की पाबन्दी की प्रतिज्ञा करके वर और कन्या पति और पतिनी बनाये गये ।

विवाह के समय सात ही फेरे फिरे जाते हैं । इनका भी कोई कारण होगा । हिन्दुओं में ७ की गिनती की विशेष मुख्यता है । ऋषि सात हैं, दिन भी सात हैं, सूर्य और चन्द्रमा आदि ग्रह भी सात ही मुख्य माने गये हैं । पृथ्वी, आकाश के लोक भी सात ही सात माने और समझाये जाते हैं । सात समुद्र और सात लोक को परिभाषा सबकी जुबान पर रहती हैं । आजकल इन बातों पर ध्यान नहीं दिया जाता । लेकिन समस्त मानव वर्ग में इस सात लोक की रियायत का विभिन्न रूपों में मौजूद रहना प्रमाण है कि इस के अन्दर कोई बहुत बड़े रहस्य की बात छिपी हुई है । और इस विशेष ख्याल का प्रचार किसी सर्व साधारण और संगठन द्वारा हुआ

है। देवता भी सात ही हैं-शिव शाक्तिक और वैष्णव छः चक्रों को मानते हुये सातवें को अपना इष्ट पद मानते हैं।

कर्म काण्ड के रस्म विवाह के अवसर पर इस अधिकता से किये जाते हैं कि उनको देखकर जी उकता जाता है। उनकी असलियत और असली मुख्यता का कम लोगों को ज्ञान होगा। लेकिन रस्म चला आता है। अब सब लकीर के फकीर बने हुये हैं। यह रस्में एक के बाद दूसरी की गईं और विवाह हो गया।

जिस समय वर कन्या पति और पतिनी बन चुके, मिरनालिनी बड़ी सजधज के साथ इस नये जोड़े के सामने से गुजरी। सुजानसिंह की दृष्टि उस पर पड़ी क्योंकि वह स्वयं इरादा करके उस विशेष अवसर पर अपनी मौजूदगी का ख्याल दिलाने आ गई थी। वह आई सुजानसिंह ने उसे और इसने उसको देख लिया। इसकी सूरत में परिवर्तन आ गया और वह उसी समय मंडप से चलती बनी, यह आश्चर्य में रह गया। कोई बात इसकी समझ में नहीं आई कि वह यहां कैसे आई। अवसर और तरह का था। वह न किसी से पूछ सकता था न अपना विचार प्रकट कर सकता था। मन की बात मन में रह गई और यह क्षण मात्र की घटना अपने पीछे उसके लिये विशेष प्रकार का प्रभाव छोड़ गई जिसका निकालना सरल बात नहीं थी। इसके अतिरिक्त उसने मिरनालिनी और मोहनी दोनों की सूरतों की आखों से मिलान कर लिया। लड़कियाँ दोनों ही रूपवान थीं। लेकिन रूप रूप में फिर भी अन्तर रहता है। प्रकृति के कारीगर ने अपनी कला के हर कारोबार में पहिचान का ख्याल रक्खा है। एक समय में दो चन्द्रमाओं का इकट्ठा होना सम्भव तो है लेकिन एक आकाशीय होगा और दूसरा पृथ्वी पर पानी में प्रतिबिम्ब के रूप में स्थित हो गया। जो अन्तर प्रकाशमय और प्रतिबिम्बित चन्द्रमा में होता है वही अन्तर उसने मिरनालिनी और मोहनी में देखा और दंग रह गया। उसे ख्याल आया कि गलती हो गई। पृथ्वी

के चन्द्रमा की लालसा में उसने आकाशीय चन्द्रमा को त्याग दिया। क्यों ? केवल इस कारण कि वह सिद्धान्तहीन और ज्वारी था। उसे रुपया पैसा की आवश्यकता थी। ज्वारी सदा ऋणी और आश्रित रहता है और भलाई के रास्ते को छोड़कर बुराई का रास्ता ग्रहण करता है। उसने मोहनी के साथ इस कारण विवाह को अधिक अच्छा समझा था कि उसका मामा धनी था और उसके अपनी कोई संतान नहीं थी। विवाह करने से वह उसके निकृष्ट भाव के पूरा करने का साधन बन सकेगा। यह बात मिरनालिनी के साथ विवाह करने से सम्भव नहीं थी। वह निर्धन घर की लड़की थी यद्यपि वह स्वयं एक अमूल्य रत्न थी। इसका ख्याल उसे नहीं आया।

यह ख्याल सबके सब एक के बाद दूसरा उसके चित्त में आये। चेहरे का रंग फक हो गया। मिरनालिनी तो सूरत दिखाकर गुप्त हो गई और उसकी दिली हालत बदलकर चली गई। इसे अचेनता आने ही को थी किन्तु अपने आप को काबू में रख लिया।

लोगों ने पूछा—"मिजाज कैसा है ?" उसने दबी जुबान से उत्तर दिया—"कुछ नहीं थकान है।" उत्तर उचित था। सबको सन्तुष्टि हो गई क्योंकि वह उसी महीने में बीमार पड़ा था। यह वह जानते थे।

ज्यों त्यों करके और रस्म पूरे किये गये। मोहनी कोमल स्वभाव थी और सूक्ष्म चित्त वृत्ति वाली होने के कारण सूक्ष्म बोध भी रखती थी। उसने मिरनालिनी को सामने आते हुए देख लिया था। भांप गई कि मिरनालिनी का रूप उस पर जादू कर गया। वह बोल नहीं सकती थी, लेकिन यह ख्याल उसके हृदय में गढ़ गया और सूक्ष्म रूप में प्रभाव डालकर ठीक विवाह के समय उसे दुखी कर गया।

विवाह हो गया। दूल्हा जनवासा आया। सबने मिलकर भोजन किया। यह भी सम्मिलित था लेकिन दिल कहीं, ख्याल कहीं, और

देह कहीं था। होश ठौर ठिकाने नहीं थे। सोचता था—"यह यहा कैसे आ गई ? क्यों आ गई ?" उसी समय वैद्य की बात याद आ गई जिसे आंखों से देखा, उसका प्रतिबिम्ब आंखों के शीशे से उतर कर दिल के सूक्ष्म शीशे में सदा के लिये बदल जाता है। फिर धोने से नहीं मिटता। विचार करने लगा—"वह असल थी या उसका ख्याली अक्स था जो यों ही आखों के सामने आ गया था। उस प्रश्न का उत्तर कौन देता ?"

भोजन के बाद वह लेट गया ताकि नींद में उसे भूल जाय लेकिन नींद किसे आती है। रह रहकर मिरनालिनी के साथ दुर्व्यवहार का ख्याल उसे सताने लगा। आदमी सोचता है कि उसका कुकर्म समय पाकर नष्ट हो जाता है। यह गलत है किन्तु उसका दिल पर गहरा चिन्ह पड़ जाता है। वह पीछा नहीं छोड़ता। और उसकी याद प्रायः तड़पाया करती है। वह लेटा हुआ है और मिरनालिनी की सूरत दिलकी आंखों में फिर रही है। आंखें बन्द करता है और उसे अपने हृदय के अन्दर पाता है।

दिल के आइने में है तस्वीर यार।
जब जरा गर्दन झुकाई देख ली॥

दिन के प्रकाश में, दायें बायें, आगे पीछे, ऊपर नीचे उसे मिरनालिनी ही दिखाई पड़ने लगी। घबरा गया।

दोपहर के समय दुल्हा रस्म के अनुसार दुलहिन के बाप के घर बुलाया गया। घर स्त्रियों से भरा हुआ था। उनके ठठ जमा थे। ऐसे अवसर पर स्त्रियों को दुलहा के साथ मजाक की सूझती है। वह भेंट लाती हैं और साथ साथ कटीजली भी सुनातीं और छेड़ती हैं। यह रस्म है।

यह वहां बैठा हुआ था, किन्तु चित्त कहीं और था और आंखें किसी और ही खोज में लगी थीं।

एक स्त्री बोली—"अजी ! आप इस समय कहां हो ? हमको क्यों नहीं देखते ? हम तो तुम्हारे दर्शन को आई हुई हैं।"

दूसरी कहने लगी—"कृष्ण कुंवर हैं। मां की याद आई होगी। यशोदा माई इनको बहुत प्यारी हैं।"

यशोदा कृष्ण की मां का नाम था और मोहनी की मां का भी नाम था। वह लज्जित हो गई और आँचल से मुंह छिपा लिया।

तीसरी बोली—"यशोदा इनकी मां थी। अब तो सास हो गईं। यह कैसा रिश्ता है ! अंधेर हो गया ! मां सास नहीं होती। कुंवर जी ! यह कैसा रिश्ता है !"

चौथी अधिक वाचाल थी। कहने लगी—"कुंवर कन्हाई जो ठहरे। यह जो न कर डालें वह थोड़ा है। इनके यहाँ सब उचित है। उचित अनुचित से कृष्ण को क्या काम !"

पाँचवीं—"कृष्ण तो चितचोर और मन मोहन है। यह बहरूपिये हैं। सांग किया करते हैं। क्या तुमने इनकी रास लीला के कृत्य नहीं सुने हैं !"

छटवीं—"कान्ह जी ! सांवला रंग किसे दे आये ?"

सातवीं—"कुबिजा के हाथ बेच आये हैं। कुबिजा टेढ़ी पीठ वाली स्त्री थी जो कृष्ण पर मोहित थी।"

कुबिजा का नाम लेते ही स्त्रियों में हंसी पड़ गई।

एक स्त्री ने चुटकी ली—"मुंह पर गोरा रंग मल लिया होगा। पानी मगाती हूँ। मुंह धोलो। तुम्हारे सांवले रंग के दर्शन करलें। उसकी बड़ी प्रशंसा सुनी है।"

दूसरी—"लाख धोयें। असली रंग कहां जाता है !"

स्याह दिली की यह आदत न छूटेगी हरगिज।
हजार पानी से तू जिस्म अपना धोया कर ।।

तीसरी—"क्या यह स्याह दिल भी हैं ?"

चौथी—"इसमें संदेह ही क्या है ! कौवा तो कौवा ही रहेगा, चाहे उसे सौ मन साबुन से धोयें ! कहीं सूरत पर पाउडर मलने से असली रंग जाता है !"

पांचवी—"काला रंग आंखों पर चढ़ गया । पलक और भौं को देख लो। शरीर से हटा सिर पर गया । काले बाल देख लो। होठों पर काली काली मूछें क्या कह रही हैं-

स्याही दिल की धोने से नहीं जाती तेरी।
पलक से अबरूओं से गैसू से मूछों से है जाहिर ।।"

इस पर हंसी पड़ गई।

अन्त में इससे न रहा गया । बोल उठा—"तुम मुझे बना रही हो।"

एक स्त्री—"अजी तुम्हें कोई क्या बनायेगा ! तुम आप बने बनाये आये हो। तुम्हारी गड़त यशोदा माई ने अपने पेट में की थी। छिपे चोरी ! वह यहां होतीं तो मैं पूछती—क्यों माई ! कृष्ण जी कैसे गड़े गये। बाबानन्द में तो यह निपुणता नहीं थी।"

यशोदा फिर लज्जित हुई । और इनकी फबतियों का ख्याल न करके अन्दर चली गई।

सुजानसिंह चुपचाप इनकी कटीजली सुनता रहा । हंसी खुशी की बात थी । इसकी चिन्ता जाती रही । स्त्रियां भेंट देकर घरों को चली गईं।

———

# उन्नीसवाँ प्रकरण

## बिदाई

भोज हुआ। राग रंग की मजलिस जमी । मोहनी के मामा ने बहुत कुछ नकद, अन्न और वस्त्र आभूषण दिये। जालिमसिंह स्वयं रईस था। रुपया रुपये को खेंचता है और सुजानसिंह ने इसी रुपया लेने के विचार से यह विवाह कराया था।

जब सब रस्में पूरी हो चुकीं, बारात विदा की इच्छुक हुई। मोहनी को भी साथ ले जाना था । वह सबसे गले मिली। रोई धोई। आंसू बहाये । विवाह शादी के अवसर पर यह भी एक रस्म है और सभ्यता है अन्यथा इस रोने में कोई सचाई होती तो विवाह क्यों किया जाता।

मोहनी अन्त में मिरनालिनी से मिली और सबकी दृष्टि बचा-कर कोने में ले गई।

"बहिन ! अब तो मैं पृथक होती हूँ मगर यह अस्थायी पृथकता है।"

"जाओ, खुश रहो। पति को सेवा और प्रेम से प्रसन्न रक्खो। स्त्रियों का यही कर्त्तव्य है । मैं तुम्हें आशीर्वाद देती हूँ । घर बर दोनों अच्छे हैं।

"अब तुम कब मिलोगी ?"

"दुनियाँ में किसी बात का ठिकाना नहीं है । यदि दुनियां में हूं तो कभी न कभी अवश्य मिलूंगी।"

"धन्य है ! तुमने ऐसा तो कहा।"

"क्यों ?"

"मुझे भय के लक्षण दिखाई पड़ रहे हैं । ताऊ और ताई का दिल तुम्हारी ओर से भरा हुआ है । क्या हमारी आशा पर पानी ही पड़ेगा ?"

"भय की क्या बात है। मैं दूसरों के भय और आशा से निस्सम्बन्ध रहती हूं । मैं मन, बचन और कर्म से किसी की हिंसा नहीं करती। यदि कोई बुरा मानता है तो उसकी खुशी ! मैं फिर मिलकर क्षमा मांग लूंगी । मैंने जान बूझकर कोई ऐसा काम नहीं किया जो उनको बुरा लगे।"

"मैं तो जा रही हूँ । तुमने इस बात का उत्तर नहीं दिया कि हमारी आशा और लालसा पर पानी क्यों पड़ रहा है।"

"मैं नहीं समझती कि तुम्हारी आशा क्या है।"

"अम्मा चाहती हैं कि दादा के साथ तुम्हारा विवाह हो।"

"मैं क्या कहूं । अपने दादा से पूछ देखो। मुझे स्वयं शादी के सम्बन्ध से कोई दिलचस्पी नहीं है।"

"यह लो ! अभी तो पानी ही पड़ा था, अब बर्फ पाले की बारी आई।"

"तुम पति के घर जाकर खुश रहो। मेरी चिन्ता न करो। मेरी खुशी तुम्हारी खुशी में है। जब जब मैं सुनूंगी कि तुम खुश हो, तो मुझे भी सच्ची खुशी मिलेगी। ईश्वर करे तुम हरी भरी रहो। दूधों न्हाओ, पूतों फलो। यह मेरे सच्चे हृदय स दुआ है।"

"यह तो मैं जानती हूं।"

"बस ! अब अधिक वार्तालाप का अवसर नहीं है। लोग ईश्वर जाने क्या समझें !"

और वह दोनों अलग हो गईं।

मामा, मामी, यशोदा, रामसिंह, तारासिंह, जोधाबाई और समस्त रिश्तेदार विदा करने की तैयारी में लगे थे।

मोहनी को फिर वस्त्र आभूषणों से सुसज्जित किया गया। उ पालकी पर बिठाकर विदा किया। बारात लौट कर चली औ कुड़मधुम कुड़मधुम की आवाज गूंज उठी।

यह तो इधर गये और घर में उदासी छा गई। विवाह के समय चहल पहल रहती थी। बारात गई, महमान भी गये। अब केवल इने गिने आदमी रह गये। उदासी तो आनी ही थी।

सब लोग मन मार कर सो रहे ताकि कई दिनों के जागरण और परिश्रम की थकान दूर हो। जब सो चुके, मोहनी की याद आने लगी। तारासिंह ने दूसरे दिन प्रात: को घर जाने की इच्छा प्रगट की, यशोदा उन्हें दो चार दिन रोकना चाहती थी लेकिन उसका घर सूना था। वह एक घंटे को भी घर से अलग रहना नहीं चाहता था।

शाम को भोजन के बाद पुरुष तो बैठक को चले गये। तीनों स्त्रियां रह गईं।

यशोदा ने जोधाबाई से कहा—"मिरनालिनी मेरी धर्म की बेटी है। मैं इसमें और मोहनी में कोई भेद नहीं मानती।"

जोधाबाई बोली—"लड़की तो लड़की ही है। मैं कब इसे लड़की नहीं समझती लेकिन इसे मेरी बेटी होने से इंकार है।"

यशोदा—"क्यों मिरनालिनी ! यह क्या कहती हैं।"

मिरनालिनी—"मैं इन्हें माता ही समझती हूँ।"

योधाबाई—"सच्ची या झूंठी ?"

मिरनालिनी—"सच झूठ आपेक्षिक शब्द है। न कोई बात यहां सच है न झूठ। समय पर जो चाहे कह दो।"

योधाबाई यशोदा की तरह सीधी नहीं थी। कह उठी—"यह दुनिया है। समय के आधीन है। यहां हर जगह काल भगवान का राज्य है। और बात भी समय के लिहाज से कही जाती है।"

मिरनालिनी चुप हो गई, सिर झुका लिया।

योधाबाई ने कहा—"तुम मुझे सच्ची मा बनाओ । और मेरी सच्ची बेटी बन जाओ। यह रामसिंह के पिता की भी इच्छा है और मैं भी यही चाहती हूं।"

मिरनालिनी—"माता ! तुम बड़ी भोली हो,जो निस्सहाय लड़की को अपने प्रेम का अधिकार प्रदान करना चाहती हो । मैं तुम्हारी भावना को जानती हूं। तुम्हारे प्रेम भाव का आदर करती हूं लेकिन तुमको यह बिल्कुलपता नहीं है कि मैं कौन हूं, क्या हूँ और कैसी हूं। यह तुम्हारी सच्ची सुहृदयता का प्रमाण है कि तुम बिना जाने बूझे मुझे अपनी गोद में लेना चाहती हो।"

योधाबाई—"तुम क्या हो ?"

मिरनालिनी—"न फूल फल हूं, न टहनी बारदार दरख्त। खबर नहीं मुझे क्यों, बागवां ने पैदा किया !"

योधाबाई—"हमको इसकी भी परवाह नहीं है । तुम चाहे जो कुछ हो, मैं तुम्हें अपने प्रेम का उत्तराधिकारी स्वीकार करूंगी।"

मिरनालिनी की आंखों से टप टप आंसू गिर पड़े । यशोदा ने उन्हें आँचल से पोंछ दिया।

योधाबाई—"बेटी ! तुम कुछ कहती क्यों नहीं हो ?"

मिरनालिनी—"क्या मेरे आंसू और मेरी निस्सहाय दशा से मेरी दशा प्रगट नहीं होतो ?"

योधाबाई—"नहीं, शायद तुमने मेरा अभिप्राय नहीं समझा। मैं रामसिंह का विवाह तुम्हारे साथ करना चाहती हूँ।"

मिरनालिनी—"मैं सब कुछ जानती हूँ। इतनी अज्ञान नहीं हूं। आपके पुत्र का मुझ पर अहसान है । मैं इन्हें जान देने वाला और रक्षक समझती हूं।"

योधाबाई—"तो मैं उससे पूछ देखूं ?"

मिरनालिनी—"आपको अधिकार है लेकिन समझ बूझकर पूछियेगा। पूछने में कोई हानि नहीं है।"

योधाबाई—"मेरा लड़का आज्ञाकारी है। मैं अभी उसे बुलाती हूँ।"

रामसिंह बुलाया गया। वह उसी समय चला आया। मिरनालिनी वहां से खिसक गई।

योधाबाई ने उससे कहा—"बेटे! तुझसे कुछ पूछना चाहती हूँ।"

रामसिंह—"पूछो, क्या पूछती हो?"

योधाबाई—"मोहनी अपने घर गई। अब मुझे तेरे विवाह की चिन्ता है।"

रामसिंह—"इस समय हम सब मामा के घर हैं। महमान के रूप में आये हुये हैं। ऐसे विषयों की पूछताछ का स्थान अपना घर है। घर पर चलकर जो कहना हो कह लेना।"

योधाबाई—"यह भी अपना ही घर है। मैं दूसरा थोड़े ही समझती हूँ।"

रामसिंह हंसा—"मुझे भी तो सोचने समझने का अवसर मिलना चाहिये। क्या शादी विवाह के मामले शीघ्र तै हो जाते हैं। कल प्रातः घर चलेंगे। वहां बैठकर बातचीत कर लेंगे।"

योधाबाई—"संयोग से यहां सब घर के लोग इकट्ठे हुये हैं। फिर ऐसा अवसर न मिलेगा। मोहनी की मा भी मौजूद है। कल सब बिखर जायेंगे। कोई कहीं होगा कोई कहीं।"

रामसिंह—"तुम्हें मुझसे पूछना है! पंचायत तो नहीं करना है। मैं मोहनी के विवाह के प्रबन्ध करते करते थक गया हूं। बुद्धि ठिकाने नहीं है। हाथ पांव शिथिल हैं। आलस्य ने घेर रक्खा है। ऐसी दशा में मैं तुम्हें क्या उत्तर दे सकूंगा। तुम आप ही समझ लो।"

बात उचित थी। योधाबाई के हाथ पांव ढीले हो गये। यशोदा की तो बोलती ही बन्द हो गई थी। वह आदि से लेकर अन्त तक योधाबाई के सामने उसे बोलने का साहस नहीं हुआ।

योधाबाई—"अच्छा, जाकर सो रहो। मिरनालिनी घर चलेगी या मोहनी की मा का साथ देगी?"

रामसिंह—"मैं तो यही कहूंगा कि वह चाची के साथ जाय। मोहनी चली गई, वह अकेली रह गई। मिरनालिनी की संगत से उसका मन बहल जायगा। यों उसकी खुशी! कोई जबरदस्ती तो नहीं है।"

योधाबाई और यशोदा इस बात से प्रसन्न हो गईं। उन्हें सन्तुष्टि हुई कि लड़के को कम से कम उनकी सन्तुष्टि का ख्याल है और इसी में सब कुछ है।

मां और चची से विदा होकर रामसिंह बैठक को चला गया। वहां जाकर खर्राटे की नींद लेने लगा। यह भी थकी माँदी थी, लेटने की देर थी, आंखे बन्द और स्वप्नलोक की सैर! प्रेम के बाद नींद बड़ी आनन्ददायक होती है। ऐसी सोईं कि तन बदन का होश नहीं रहा।

सुबह के समय भी सब देर तक सोया किये। जब आंखें खुली, सूर्य चढ़ गया था। नाश्ता किया और सब सांडिनियों पर चढ़कर मामा के घर से विदा हुये।

—०—

# बीसवां प्रकरण

## पूछताछ

सुजानसिंह का विवाह घर की बसावट थी। विचित्र मामला है। यहां जिस घर में जो लड़की लड़का हैं वह इकलौती, इकलौता है। यह भी मा बाप का अकेला लड़का था। इसलिए लाड़ला था। लाड़ प्यार यदि समता से ऊपर गया तो संतान की तबाही और बर्बादी का कारण होता है। सुजानसिंह की यही दशा थी। उसे शिक्षा

नहीं मिली थी। दीक्षा भी मिली तो वह बहुत साधारण थी। प्रकृति माता ने उसे भलाई से बंचित नहीं किया था। नौकरों और छोटे आदमियों की संगत से उसने कई आदतें सीख ली थीं जिनके कारण वह बदनाम था, किन्तु उसमें एक विशेष गुण था। वह झूठ कम बोलता था। जो कहता सच कहता। उसके झूठ में भी सचाई का अंश रहता था। जिन लोगों को उससे हानि पहुँची, अथवा जिनको उसने हानि पहुंचाई, उनमें स्वयं हानि पहुँचाने का माद्दा था। इस लिये बहुत बातों में वह निर्दोष भी कहा जा सकता है। एक आदमी है जो स्वभाव से चिढ़चिढ़ा है मगर उसे क्रोध नहीं आता है किन्तु यदि कोई बारबार उसे छेड़ता रहे तो कभी कभी उसके क्रोध की अभिव्यक्ति होना आश्चर्य की बात नहीं है। बड़े आदमियों के लड़कों को उनके नौकर अपने लाभ के लिये बिगाड़ देते हैं और बुरी आदत डलवाकर उन्हें निजी स्वार्थ और लाभ का साधन बना लेते हैं।

उसे कमीने स्वाभाव के नौकरों ने जुआ खेलने की आदत सिखलाई और वह मा बाप से रुपया लेकर पहिले इस काम में खर्च करता रहा। फिर जब आदत पड़ गई तो छिपे चोरी कर्ज लेकर जुआ खेलने लगा। मा बाप को उसने अपने इस कृत्य से अनजान रक्खा अन्यथा वह उसकी रोक थाम करते। इसके प्रगट करने में उसे लज्जा लगती थी। नौकरों ने उसे ऐयाशी भी सिखाई। यह उनके जाल में फंसता गया। उसकी इस खास आदत को उस लड़की के साथ प्रयोग करने से धक्का पहुंचा, जिसे उसने रेगिस्तान में अकेली निस्सहाय दशा में छोड़ा था। गलती तो वह कर गया। लड़की सरल स्वभाव थी। उससे आंख लड़ गई। उसकी आखों की चुम्बकीय शक्ति ने लड़की को बुद्धिहीन बना दिया। यह उसे भगा लाया। रास्ते में ख्याल आया कि यह काम बुरा था। विश्वासी

के चित्त को ठेस पहुंचाना और उसे मलीन करना महा पाप है। ठेस तो पहुंच चुकी थी। बेचारी को आपत्ति ने घेर लिया। कहीं की न रही। उसे भ्रष्ट करने की कमी रह गई थी। उसे अपने दुष्कर्म पर पश्चाताप हुआ। सिवाय इसके कुछ न सूझी कि उसे राह में छोड़ देता, यद्यपि यह भी बड़ा अपराध था किन्तु उसमें सोच विचार का उभार भी उस लड़की की सद्भावना का ही प्रभाव समझना चाहिए। बुरों की संगत बुरा बना देती है। यह सच है, लेकिन भलों की संगत भी भलाई की ओर लाती है। मनुष्य नहीं जानता कि किस समय और किस घटना से उसका चित्त क्षण मात्र में पलट जाता है। यह विचार या संकल्प का सूक्ष्म नुक्ता है जो सोचने समझने और मनन करने योग्य है।

बुराई से बुराई का पैदा होना साधारण सी बात है। कभी कभी ऐसा भी देखने में आया है कि बुराई के पेट से भलाई पैदा हो रहती है जिसका उदाहरण हम सुजानसिंह के जीवन की इस घटना में देखते हैं। एक पवित्र हृदय को हानि पहुँचाने से उसमें पश्चाताप के साथ सोच विचार का माद्दा पैदा हो आया। और वास्तव में उसी समय और उसी दिन से कुछ का कुछ बनने लगा।

उसे सुसराल से काफी धन मिला। सास ससुर, रिश्तेदार, स्त्री पुरुषों ने इतनी अधिक रकमें जेबर के साथ उसे भेट में दी थीं कि वह बहुत सा ऋण चुकाने के लिये पर्याप्त थीं। बाप ने उसे हाथ नहीं लगाया। सुजानसिंह ने विवाह से आते ही रुपया और आभूषण देकर महाजनों से छुटकारा पा लिया।

सुजानसिंह बहुत सुन्दर था। मोहनी भी सुन्दर थी। दोनों का मेल खूब हुआ।

वह साथ रहने लगे और प्रेम का सम्बन्ध स्थापित हो गया। पहिले वह उससे लज्जा करती थी। फिर लज्जा रहित हो गई। यह

लज्जा एक प्रकार के सावधानी, भय और सन्देह की भावना है प्राकृतिक है। सब में व्याप्त है। मनुष्य, पशु, पक्षी सब में होती है पारस्परिक प्रेम से यह धीरे धीरे दूर हो जाती है। फिर साथ रहने वाले ऐसे लज्जा रहित हो जाते हैं कि एक दूसरे से दूध और चीनी को तरह मिल जाते हैं।

दोनों में प्रेम हो गया किन्तु मोहनी स्त्री होने के कारण कोमल स्वभाव अधिक थी। उसने अपने अंतरीय बोध की सहायता से थोड़े ही दिनों में महसूस कर लिया कि पति के हृदय में किसी विशेष प्रकार का खटका है जो खटकता रहता है। और उसे वह खुशी प्राप्त नहीं है जो नव विवाहित पुरुष को नव स्त्री को संगत से प्राप्त होती है। मर्द उसे भांप नहीं सकते। स्त्री ही कुछ उसका पता पाती है। यह भांपने की शक्ति भी स्वाभाविक है और स्त्री पुरुष दोनों ही से लागू है। यह बच्चों में भी होती है। उम्र पाकर संगत, शिक्षा और विभिन्न प्रभावों के कारण पुरुषों में तो यह दब जाती है। स्त्री इसे बहुत समय तक असली दशा में सुरक्षित रखती है। उसमें कमी नहीं आती।

वह चाहती थी कि पति स्वयं प्रगट करे, लेकिन उसने ऐसा नहीं किया। अवसर पाकर स्वयं उसी ने छेड़ा।

एक रात्रि को मोहनी ने सुजानसिंह से कहा—"प्राण पति! मैं महसूस करती हूँ कि आपको मुझमे वह प्रसन्नता नहो मिल रही है जो पुरुष को स्त्री के मेल से मिलनो चाहिये।"

सुजानसिंह चौकन्ना हुआ—"नहीं! यह बात नहीं है। तू बहुत अच्छी और सुन्दर है, मैं तुझ सेप्रसन्न हूं।"

मोहनी—"प्रसन्न तो आप हैं, यह मैं जानती हूँ, किन्तु आप चिन्तित रहते हैं।"

सुजानसिंह—"तू ने गलत निष्कर्ष निकाला।"

मोहनी—"सम्भव है मेरा ख्याल गलत हो । मैं इसे केवल महसूस करती हूँ ।"

सुजानसिंह को आश्चर्य हुआ । "स्त्रियां सन्देह स्वभाव होती हैं । यह उनका स्वाभाव होता है ।"

मोहनी—"आपका विचार ठीक है । यह स्त्रियों की मानसिक दुर्बलता की दलील है लेकिन आपको यह भी ख्याल रहे कि पुरुष अपनी स्त्री के साथ नंगा हो जाता है । दूसरी जगह वह ऐसा नहीं करता । दोनों के देह, मन, होठ, छाती और भीतरी नस नाड़ियां तक मिलते हैं । जिस प्रकार स्वच्छ दर्पण में सूरत का प्रतिबिम्ब पड़ता है और वह देखने वाले के रूप को स्पष्ट दिखा देता है, वहां तक कि एक बाल के टेड़े होने तक का पता लग जाता है , उसी तरह स्त्रियाँ दर्पण बनकर पुरुष के प्रतिबिम्ब को ग्रहण कर लेती हैं और उसकी कमो को जान लेती हैं ।"

सुजानसिंह के आश्चर्य का ठिकाना न रहा । उसने जुबान नहीं हिलाई, आंखों से अपनी स्त्री को देखता रहा ।

मोहनी उसे असमंजस में पाकर आप ही कह उठी—"मेरे इस पूछने का यह प्रयोजन है कि यदि मेरा बिचार ठीक है तो मैं स्त्री हूँ अपने प्रयत्न से आपके इस दिलकी खटके के खटके को मेंट दूं ।"

सुजानसिंह हंसा—"तू विचित्र लड़की है । अभी आई और अभी से इस तरह की बातें शुरू कर दीं ।"

मोहनी—"क्या आप मुझसे अप्रसन्न हो गये ?"

सुजानसिंह—"अप्रसन्न नहीं किन्तु प्रसन्न हुआ हूँ । कम से कम इससे इतना तो पता लगा कि तुझे मेरी चिन्ता है ।"

मोहनी—"यह लाजिमी बात है । स्त्री को पुरुष की अचिन्तपने से अचिन्तपना और खुशी से खुशी रहती है । दोनों असल व नकल, रूप और प्रतिबिम्ब, आत्मा और देह हैं ।"

सुजानसिंह– "पता नहीं, स्त्रियों को कौन शक्ति ऐसी सूझ सुझात रहती है।"

मोहनी–"ईश्वर के सिवाय और कौन ऐसी शिक्षा दे सकता है।'

सुजानसिंह—"मुझे कोई चिन्ता नहीं है।"

मोहनी—"ठीक है, चिन्ता नहीं है। फिर भी ऐसा ज्ञात होता है कि आपसे कोई काम ऐसा हो गया है जिसके कारण आप कभी कभी उसे याद करके व्याकुल हो जाते हैं।"

सुजानसिंह को फिर आश्चर्य हुआ।

मोहनी "आप अपने संशय को दूर कीजिये। जो बात हो वह स्पष्ट कह दीजिये। मैं आपका दुख दूर कर सकूंगी।"

सुजान—"क्या तू मुझे बुरा आदमी समझती है ?"

मोहनी—"रामराम ! क्या कभी कोई हिन्दू स्त्री भी ऐसा समझती है। पति तो स्त्री का इष्ट है। इष्ट को बुरा समझना पाप है।"

सुजान –"फिर यह प्रश्न क्यों किये जा रहे हैं ?"

मोहनी—"मेरा धर्म है कि मैं आपकी हर बात की साथी रहूँ। नहीं तो मैं आपकी पतिनी क्यों बनी हूँ।"

सुजान—"पतिनी बनी है तो पतिनी बनी रह।"

मोहनी—"क्या पतिनी बनने में कुछ कमी है। पतिनी तो बनी और जीवन भर के लिये बनी ! दुनिया भर की साक्षी हो चुकी। मां बाप का घर छोड़ आई। शाखा की तरह मा बाप से अलग को गई। और आपके साथ जोड़ दी गई। आपके अतिरिक्त अब मेरा कौन है आप ही मेरा संसार, आप ही मेरे रक्षक हैं। मैं मन और प्राण से आपकी हो चुकी। और फिर भी आप ऐसी बातें करते हो !"

मोहनी की आंखों में आंसू भर आये।

सुजान—"तू तो बात बात में रोने लगी।"

मोहनी—यह स्त्री और बच्चों की दिल्की ठेस लगने के प्राकट्य

का रूप है। इसके अतिरिक्त अपनी रक्षा और हिमायत लेने का और कोई साधन ईश्वर ने नहीं दिया।"

सुजान—"राम राम! मैं तेरे दिल को ठेस लगाना नहीं चाहता। तेरी खुशी में मेरी खुशी है।"

मोहनी—"इतनी देर में आपने सच्ची बात कही है। यदि यह सच है तो फिर अपना हाल मुझे सुना दीजिये।"

सुजान—"मैं तो बदनाम आदमी हूँ। सब लोग मेरी गलतियों से परिचित हैं। क्या तूने मेरे हालात नहीं सुने ?"

मोहनी—"मैं सब सुन चुकी हूं। उनकी ओर मेरी दृष्टि नहीं है। मैं आपको बुरा नहीं समझती। कोई स्त्री अपने पुरुष को बुरा नहीं समझती।"

सुजान—"फिर तू मुझे क्या समझती है ?"

मोहनी—"पति, ईश्वर, इष्ट और अपने जीवन का उद्देश्य।"

सुजान—"मेरे हालात सुनकर तुझे बुरा नहीं लगा ?"

मोहनी—"नहीं, बचपन के खेल कूद में बच्चे क्या नहीं करते! आपने पुरुष का चोला लिया है। पुरुष बाहर रहता है। परिस्थियों के वश में आना उसके लिये साधारण बात है। स्त्री अन्दर रहती है। उसके मार्ग में खतरा नहीं आते। खेद उस समय होता यदि मुझ से कोई अनुचित कर्म हुआ होता। उस समय मैं अपने आपको कभी क्षमा न करती।"

सुजान—"प्रिये! विश्वास रख! मैं भी बुरा आदमी नहीं हूं।"

मोहनी—"मैं जानती हूं। थोड़े दिनों से आपके साथ रहती हूँ। आपके अध्ययन करने के सिवाय मैं करती क्या हूं! आप हर तरह से अच्छे हो।"

सुजान—"फिर यह सवाल क्यों है ?"

मोहनी—"केवल आपको प्रसन्न रखने के भाव से, ताकि किसी तरह से आपको नाम को भी कष्ट न हो। मुझे आपको सुस्त रहने का

कारण ज्ञात हो जाय, मैं उसका इलाज करूं और फिर हम दोनों सुख का जीवन व्यतीत करें। क्या यह विचार बुरा है ?

सुजान—"नहीं"

---

# इक्कीसवाँ प्रकरण

## रहस्य

मोहनी—"तो फिर देर न कीजिये। स्पष्ट कह डालिये। मैं फिर यह प्रश्न आपसे दूसरी बार न करूँगी। सच्ची स्त्री बनकर आपकी चिन्ता के दूर करने में लगूंगी। यही मेरा धर्म होगा।"

सुजान—"सुनो प्रिये ! मैंने अपने जीवन में जान बूझकर किसी की हानि नहीं की। एक अवसर पर मुझसे बड़ी गलती हो गई। एक सुन्दर लड़की मेरा रूप रंग देखकर मोहित हो गई। मैं उसे अपनी मूर्खता से भगा लाया। राह में तुम्हारे साथ विवाह करने के ख्याल से रेगिस्तान में छोड़ आया। इसका खेद मुझे हर समय रहता है।"

मोहनी—"क्या उस लड़की के मा बाप को इसकी जानकारी है ?"

सुजान—"नहीं।"

मोहनी—"तुमको पहिले उसके साथ विवाह करने का ख्याल होगा।"

सुजान—"नहीं, यह बात कुछ ऐसी अचानक हो गई है कि मुझे जुबान खोलने का साहस नहीं होता। उसने मुझे देखा। मैंने उसे देखा। दोनों का दिल हाथ से जाता रहा। साधारण सी बात चीत हुई। मैं उसे भगा लाया। राह में तुम्हारा ध्यान आया। मैंने उससे कहा—"मैं बचन का पक्का आदमी नहीं हूं।" वह बोली—"मुझे उतार दो।" दोनों सांडनी पर सवार थे। वह उधर उतर पड़ी। मैं इधर चला आया। बस इतनी सी बात है।"

मोहनी—"यह भाग्य का खेल है। न तुम्हारा अपराध है, न उसका। वह मां बाप के घर लौट गई होगी।"

सुजान—"ऐसा सम्भव नहीं है। थोड़ी देर की बात चीत में मुझे ज्ञात हो गया कि वह लज्जावान लड़की है।"

मोहनी—"फिर वह कहां गई होगी ?"

सुजान—"मैं तो उसे जीते जी अनजाने मार आया था। बुद्धि पर पर्दा पड़ गया था। रेगिस्तान में उसे उतारा, जहाँ मनुष्य बिना अन्नजल के मर जाता है। इसी बात का मुझे प्राय अफसोस रहता है।"

मोहनी—"यदि वह मिल जाय तो तुम क्या काम करोगे ?"

सुजान—"उससे प्रार्थना करूंगा। क्षमा मागूंगा।"

मोहनी—"यह उस गलती का पर्याप्त बदला नहीं है।"

सुजान—"जो कुछ मुझसे हो सकेगा, सहायता करूंगा।"

मोहनी—"विवाह करोगे ?"

सुजान—"नहीं।"

मोहनी—"विवाह कर लिये होते तो क्या हानि थी !"

सुजान—"फिर तुम्हारे मामा मेरे साथ शादी न करते।"

मोहनी—"तो दो स्त्रियां होतीं। ऐसा भी तो देश में रिवाज होगा।"

सुजान "यह मुझे स्वीकार नहीं है। मैं हजार बुरा हूँ। दो स्त्रियों का कर्त्तव्य मुझे न पाला जायगा।"

मोहनी—"स्त्री न हुई, रोग हुई।"

सुजानसिंह चुप हो रहा।

मोहनी—"मैं रोग नहीं हूँ। तुम्हारे समस्त रोगों का इलाज हूँ।"

सुजान—"तब ही तो नश्तर लगा रही हो।"

मोहनी हंसी—"किस तरह ?"

सुजान—"प्रश्नोत्तर, छेड़छाड़! यह नश्तर नहीं तो क्या है ? आज उस खेदजनक घटना का स्मरण बुरी तरह चित्त को सताने लगा।"

मोहनी—"चिन्ता न करो। कुदरत में हर रोग का इलाज है।"

सुजान—"क्या अच्छा होता कि वह एक बार मिल जाती।"

मोहनी—"उसके घर आदमी भेज कर पता लगाओ।"

सुजान—"व्यर्थ।"

मोहनी—"कुछ न कुछ करना तो आवश्यक है। तेल डालकर बैठ रहना उचित नहीं था। यह कितने दिन की घटना है।"

सुजान—:'इस जेठ में पांच महिने हो गये।"

मोहकी—"अभी जेठ समाप्त नहीं हुआ।"

सुजान—"तो फिर कुछ कम पांच महीने हो गये।"

मोहनी—"दिन बहुत हो गये। ऐसा न होना चाहिए था।"

सुजान—"अफसोस! हजार बार अफसोस !!"

मोहनी—"संभलो। काबू करो। अफसोस करना तुम्हारे लिये उचित नहीं है। मर्द बनो। स्त्री न बनो। दुनियां में क्या क्या नहीं होता। एक बार गलती होने को थी होगई। इसमें तुम दोनों के कर्म शामिल थे। कर्म के लेख को कौन मेट सकता है। वह शक्ति ब्रह्मा को भी नहीं।"

सुजान—"क्या कर्म आदमी को अन्धा बना देता है ?"

मोहनी—"क्यों नहीं! जो कुछ करता है कर्म करता है। जो कुछ होता है कर्म से होता है। मनुष्य कर्म से विवश हो जाता है।

तुम देखो कि रामचन्द्र जी सीता जी को बन में अकेली छोड़कर हिरन के पीछे दौड़े। रावण उन्हें हर ले गया। हजारों कष्ट उठाने पड़े। सीता जी को घर लाये। धोबी के ताना देने पर उसे बनवास दे दिया। जीवन भर रोते रहे। भगवान रामचन्द्र जी को लक्ष्मण जी संतान से भी अधिक प्यारे थे। उन्हें कत्ल की सजा की आज्ञा दे बैठे। वशिष्ठ जी के कहने से आँखों से दूर हटा दिया। वह इसी शोक में मर गये। तब स्वयं भरत और शत्रुहन के साथ पत्थर भरी हुई नाव में सरयू में डूब मरे। यह सब कर्म के खेल थे अन्यथा रामचन्द्र जी जैसा महापुरुष कब ऐसा कृत्य करने लगा था !"

सुजान—"तू बड़ी जानकार है।"

मोहनी—"मैंने रामायण बहुत पढ़ी है। उसकी एक एक बात मुझे याद है।"

सुजान—"रामचन्द्र जी केवल कथनमात्र को मनुष्य थे। वह तो ब्रह्म के अवतार थे।"

मोहनी—"हां, वह साक्षात् विष्णु थे।"

सुजान—"फिर कर्म के चक्कर में कैसे आये ?"

मोहनी—"मानव चोला लेने के कारण।"

सुजान—"जब कर्म के दाव पेच में पड़कर न बच सके, तो हमारे तुम्हारे जैसे मनुष्यों को क्या शक्ति है जो उसका सामना कर सके।"

सुजान—"प्रिये ! तूने इन बातों को सुनाकर मेरे हृदय को ठंडक पहुंचाई।"

मोहनी—"धन्य है। अब तुम इस तरह समझने लगे। एक बात पर क्या निर्भर है। पुराणों में सैकड़ों और हजारो कथायें इस प्रकार की आती हैं। इसी कर्म ने युधिष्ठर से जुआ खिलवाया। धर्मराज होकर वह ऐसे अज्ञानी बन बैठे कि द्रोपदी अपनी स्त्री को दाव पर लगा बैठे। बनवास हो गया। मारे मारे फिरे। अन्त में

महाभारत का युद्ध ठन गया। दोनों परिवार कट कट कर मर गये कौरवों का तो वंश ही नष्ट होगया। पांचों पाँडव द्रोपदी सहित हिमालय की बर्फ में जाकर गल गये। प्राणप्रिय ! यह कर्म जो चाहे करालें। मनुष्य उसके पंजे में पड़कर उचित और अनुचित सब ही कर्म कर डालता है।"

सुजान—"यद्यपि कृष्ण भगवान इनके सहायक और सलाहकार थे, यह भी विष्णु के अवतार और पूर्ण कला वाले कहलाते हैं।"

मोहनी—"कृष्ण भगवान की कथा तो और भी दर्दनाक है। कोई क्या सुनाये ! जैसे तुम लड़की भगा लाये थे, वैसे ही वह रुक्मिणी को भगा लाये। अन्तर यह था कि तुम से विवाह न हो सका। उन्होंने विवाह किया। अन्तिम आयु में पूर्ण सोलह कला वाले कृष्ण से क्या कृत्य हुआ ? मदिरा पान किया। समस्त यदुवंशियों को मदिरा पान कराई। मतवाले बने। लड़ बैठे। बाप ने बेटों का और बेटों ने बाप का बध कर दिया। कृष्ण जी ने महाभारत में शस्त्र नहीं उठाया था किन्तु अन्तिम समय में अपने ही हाथ से अपने ही प्यारों को मार डाला। एक यदुवंशी जीवित नहीं रहा। यह सब कर्म की खूबी है। आप ऐसा ही समझो। सँतोष से काम लो। इस दुर्घटना को भूल जाओ। मैं उसे भुला दूंगी।"

सुजान—"विश्वास होगया। तू अवश्य मुझे भुला देगी।"

मोहनी—"और सुनिये ! महाराज दुष्यन्त ने जंगल में बिना माँ बाप के जाने शकुन्तला के साथ विवाह करके छोड़ दिया। वह गर्भवती हो गई। पति के यहां आई। उसने उसे ग्रहण नहीं किया। बेचरी पहाड़ पर भाग गई। उसके पेट से भरत पैदा हुआ जो समस्त देश का चक्रवर्ती राजा हुआ है। यह देश उसी के सम्मान में भारत या भारतवर्ष कहलाता है। यह क्या था। केवल कर्म का खेल था। इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं था।"

सुजान—"किन्तु अन्त में तो दुष्यन्त शकुन्तला को वापिस लाया था।"

मोहनी हंसी—"हां, कर्म कटने के बाद ! क्या कहीं तुम भी उस लड़की को वापिस लाने का विचार रखते हो ?"

सुजान—"जिस दृष्टि से तू कहती है वह मेरा विचार नहीं है।"

मोहनी—"हां, देखना, घर में सोतिन न लाना। कहीं यदि वह मुझ से अधिक सुन्दर निकली, तो तुम मुझे भूल जाओगे और मैं कुढ़ कुढ़ कर मरूंगी।"

सुजान—"मेरी यह नीयत नहीं है।"

मोहनी—"धन्य है ! मैं ऐसा ही चाहती हूँ।"

सुजान—"इस समय तूने मेरे साथ वह व्यवहार किया है जो वैद्यराज कर गये।"

मोहनी—"कौन वैद्यराज ?"

सुजान—"जिसने मुझे अपने आंसू पिलाकर अच्छा किया। क्या तू नहीं जानती कि मुझे घोर ताऊन हो गया था। "वह वैद्य अब कहाँ है।"

"उन्हें तेरे भाई रामसिंह ने भेजा था। उन्हीं के पास होंगे। कह गये थे कि विवाह के समय दर्शन देंगे लेकिन नहीं आये। अवकाश न मिला होगा। फिर एक बार आने का वायदा कर गये हैं। तू देख-कर खुश होगी। सब कहते हैं वह अद्वितीय व्यक्ति है।"

मोहनी—"होगा ! मैं वैद्यों को मनहूस समझती हूँ। ईश्वर करे इनसे पाला न पड़े। मैं रोगी नहीं होना चाहती।"

सुजान—"ऐसा न कहना ! वह आदमी नहीं देवता है। मुझे जिन्दा कर गया अन्यथा मरने में कोई कमी नहीं रह गई थी।"

मोहनी—"तब मैं बुरा न कहूँगी।"

सुजान—"इतना अच्छा आदमी था कि पिता जी दो सौ रुपये । दे रहे थे मगर उसने हाथ तक नहीं लगाया।"

मोहना—"आश्चर्य है। मैंने तो सुन रक्खा है कि वैद्य बड़े लालची होते हैं।"

सुजान—"उसमें लालच नहीं है। पूरा साधु है।"

मोहनी—"तब मैं उसे अवश्य देखूंगी। तुम उसे बुला भेजो।"

सुजान—"पता नहीं, इस समय रामसिंह के साथ है या नहीं।"

मोहनी— विवाह के अवसर पर दादा उसे अपने साथ नहीं लाये थे।"

सुजान—"तब कहीं चला गया होगा।"

★★

# बाईसवाँ प्रकरण

## विवाह का प्रसंग

रामसिंह पर बला आई। मां बाप ने उसके विवाह के लिए कहा। वह कतराता था और अब तक बराबर किसी न किसी तरह बचता चला आता था। मोहनी का विवाह क्या हुआ कि उनको उसकी ओर अधिक ध्यान देना पड़ा। लड़के का अधिक आयु तक क्वारा रहना अपमान समझा जाता है। लोग बदनाम करते हैं और कहते हैं कि या तो लड़के में कोई दोष है या कुल में कमी है। इसलिए कोई व्यक्ति लड़की देना पसन्द नही करता। हिन्दुओं में अल्पायु का रिवाज इस कारण भी है।

योधाबाई, तारासिंह और रामसिंह एक साथ बठे थे। योधावाई ने तारासिंह को छेड़ा—"लड़का स्याना हो गया। तुमको उसके विवाह का अब तक ख्याल नहीं है।"

तारासिंह ने उत्तर दिया—"अब यह स्याना हो गया। विवाह के योग्य अब हुआ है। विवाह होते कितनी देर लगती है। विरादरी में सैकड़ों आदमी अपनी लड़कियां देने को उद्यत हैं।"

योधाबाई—"फिर अब देर किस बात की है। जीवन का क्या ठिकाना हैं। मैं चाहती हूं घर में बहू आये, मैं देखूं और मुझे प्रसन्नता मिले।"

तारासिंह—"तेरी खुशी ! रोक किसने रक्खा है ?"

योधाबाई—"तुमने रोक रक्खा है ! मेरी सुनते या मेरा वश चलता तो क्या यह अब तक क्वारा बैठा रहता।"

तारासिंह हंसा—"हर बात का समय है। समय पर सब कुछ हो जायगा। भतीजी का व्याह होगया। अब लड़के की बारी है।"

योधाबाई—"समय आगया। अब कौनसा समय आयेगा। शीघ्र विवाह हो जाना चाहिए।"

तारासिंह—"बहुत अच्छा ! हो जायगा।"

योधाबाई—"लड़की भी तजवीज करली है या यों ही कह रहे हो ?"

तारासिंह—"लड़की मिल जायगी।"

योधाबाई—"मैं अपनी पसंद की बहू चाहती हूं।

तारासिंह—"बावली हुई है ! स्याना लड़का है। कोई बच्चा तो है नहीं कि जिस लड़की को चाहा उसके साथ व्याह दिया। गुड़िया गुड्डों के विवाह के मैं विरुद्ध हूं। तूने राय दी है। कल हो मैं फिक्र करूंगा। लेकिन लड़के की राय मुख्य हैं। विवाह उसका होगा।"

योधाबाई—"हां उसकी राय अवश्य लेलो, लेकिन बहू गुण ढंग वाली हो और अच्छे स्वभाव की हो। जन्म भर का सम्बन्ध है।"

तारासिंह—"मालुम होता है तूने कहीं लड़की तजवीज करली है।"

योधाबाई—"मैंने तो तजवीज कर रक्खी हैं लेकिन जब तुम सहमत हो !"

तारासिंह—"वह किस की लड़की है।"

योधाबाई—"बाप का नाम तो ज्ञात नहीं है लेकिन लड़की का

नाम ज्ञात है।"

तारासिंह—"उसका क्या नाम है।"

योधाबाई—"मिरनालिनी।"

तारासिंह—"मैं तुमसे कहना भूल गया था। मैं स्वयं स्वरूपानन्द जी के पास गया था। मैंने और स्वामी जी दोनों ने उसे बुलाकर पूछा। उसने साफ जवाब दे दिया। उसे विवाह से इंकार है। उसका ख्याल छोड़ो। वैसे यह भी नहीं मालुम कि वह कौन है, किसकी लड़की है। दूसरे वह आयु पर्यन्त ब्रह्मचारी रहना चाहती है।"

योधाबाई—"यह तुम कहते क्या हो! अभी कल की बात है। मैंने मोहनी की माँ के सामने उससे कहा था। उसने उत्तर दिया—पहिले रामसिंह से पूछ लो। पीछे मुझसे कहो। क्या यह उत्तर पर्याप्त नहीं है। रामसिंह जैसा योग्य वर उसे कहां मिलेगा!"

तारासिंह—"आश्चर्य है! मुझे तो उसने इस तरह उत्तर दिया था कि मैं उसकी ओर से बिल्कुल निराश हो गया।"

योधाबाई—"लड़की है। पुरुषों के सामने खुल कर लड़कियां बातें नहीं करतीं। शरमाती हैं।"

तारासिंह—"तो तेरी समझे में वह सहमत है?"

योधाबाई—"पूर्ण रूप से सहमत होने की तो मैं नहीं कहती, किन्तु आधी सहमत अवश्य है।"

तारासिंह—"वह सहमत होजाय तो फिर क्या कहना है। रामसिंह उसे स्वयं लाया है। वह उसे अवश्य पसन्द होगी। उससे पूछो।"

योधाबाई—"मुझे लड़के से पूछते हुए लज्जा लगती है। यह रिवाज नहीं है। तुम आप पूछो।"

तारासिंह—"क्यों बेटे! तुझे कोई आपत्ति तो न होगी?"

रामसिंह—"पिता जी! आपत्ति तो उस समय होती है जब कोई बात हो। मैं आपकी बातें सुन रहा हूं। उसका न कोई सिर

है न पैर है। सूत न कपास जुलाहों में गुत्थम गुत्था ! बातचीत आप दोनों में है। मैं कहूं भी तो क्या कहूं।"

तारासिंह अपनी समझ में स्वतन्त्र विचार वाला था। बेटे के उत्तर को सुनकर दंग रह गया और उसका कहना भी ठीक था। मिरनालिनी वहां होती और उस से पूछ लिया गया होता, तब तो कोई बात थी। लड़की ने बिल्कुल इन्कार कर दिया था। इसको वह जानता था। योधाबाई को स्वयं पूर्ण निश्चय नहीं था कि मिरनालिनी सहमत होगी। ऐसी स्थिति में रामसिंह से रजामंदी का प्रश्न करना ही गलत था। हां, यदि उससे यह पूछा जाता कि विवाह करना स्वीकार है या नहीं, तब वह 'हां' या 'नहीं' कह सकता था। कोई व्यक्ति संशयात्मक बात का उत्तर दे भी तो क्या दे !

तारासिंह लज्जित होगया। लज्जा को छुपाते हुए कहा—"यदि मिरनालिनी सहमत हुई तब तो तुझे कोई इन्कार न होगा ?

रामसिंह—"पहिली बार आपने मेरे सामने यह प्रस्ताव रक्खा है। मुझे सोचने का अवसर मिलना चाहिये। हाँ, मैं सभ्यता और सम्मान के साथ आपसे पूछता हूँ कि इतनी शीघ्रता क्यों है।"

तारासिंह—"तूने अपनी मां की इच्छा सुन ली। वह शीघ्रता कर रही है।"

रामसिंह—"अम्मा जी ! आप क्यों शीघ्रता करती हो। विवाह बड़ी जिम्मेदारी का काम है। मेरा ध्यान अभी तक इस ओर नहीं है। मेरा कर्त्तव्य आप की सेवा कर देना है। क्या मैंने सेवा करने में कोई अपराध किया है।"

योधाबाई चुप रही। वह लड़के से इस विषय पर तर्क वितर्क नहीं करना चाहती थी। सभ्यता की दृष्टि से मां बाप दोनों को उचित नहीं था कि वह लड़के से पूछें कि तेरा विवाह कर दिया जाय या नहीं। विवश तारासिंह को उसके पक्ष में बोलना पड़ा।

विवाह का उद्देश्य वंश के सिलसिले को बनाये रखने से है। हमने तुझे पैदा करके अपना कर्त्तव्य पूरा कर दिया। अब तेरा कर्त्तव्य है कि पूर्वजों का वंश बना रहे।"

रामसिंह—"वंश के बनाये रखने की सूरत कुछ ऐसी नहीं है कि व्यर्थ विवाह किया जाय। इसकी कई सूरतें होती हैं।"

तारासिंह—"मैं सुनूं तो सही कि वह क्या सूरतें हैं।"

रामसिंह—"वंश के बनाये रखने की एक सूरत तो भिरंगी मक्खी है जो किसी कीड़े को लेकर अपने छत्ते में बंद करके उड़ जाती है और वह कीड़ा धीरे धीरे भिरंगी के रूप में बदलता हुआ भिरंगी हो जाता है। साधु आदि का वंश इसी क्रम से चलता है.....।"

"तारासिंह ने बीच से बात काट दी। अभी रामसिंह ने पूरा उत्तर तक नहीं दिया था कि वह कह उठा कि यह सच्चा और ठीक ढंग वंश के कायम रखने का नहीं है। ठीक वह है कि सन्तान वीर्य्य से विवाह करके पैदा की जाती है।"

रामसिंह "सृष्टि में यह विवाह एक प्रकार का नहीं है। विवाह कई प्रकार का होता है।"

तारासिंह ने फिर आपत्ति की—"लड़के! मैं जानता हूं कि विवाह कई प्रकार का होता है। जैसे गंधर्व विवाह, देवविवाह, राक्षसी-विवाह आदि। सबसे अच्छा देवविवाह है जो गा बजाकर शास्त्रानुसार जाति भाइयों की उपस्थिति में वर और कन्या की पारस्परिक प्रतिज्ञाओं के साथ होता है। आजकल उसी की पृथा है। मैं तेरा ऐसा ही विवाह करना चाहता हूँ।"

रामसिंह—"यदि आप मुझे रोकें नहीं तो मैं निवेदन करूं लेकिन शर्त यह है कि मेरी बात पूरी पूरी सुन लो जाय।"

तारासिंह—"कहता क्यों नहीं। मैं तो सुनने को तत्पर हूं।"

रामसिंह—"जिसे आप देवविवाह कहते हैं उसका ढंग पहिले

समय में चाहे जो कुछ रहा हो, अब वह नहीं है। मैं उसे अनर्थ विवाह और पशु विवाह कहता हूँ। लड़के लड़की की रजामंदी के बिना और समझ बूझ का समय आये बिना मंडप में बिठाकर एक दूसरे के साथ बलात नाता जोड़ दिया। दोनों ओर के पंडितों ने एक प्राचीन भाषा अथवा समझ में न आने वाली भाषा में वचन बद्ध होने के श्लोक बोल दिये और विवाह होगया। यह देवविवाह कैसे हुआ ?"

तारासिंह—"तब ही तो मैंने तुझे इस आयु तक रोक रक्खा था कि स्याना होकर विवाह की प्रतिज्ञाओं को समझ सके। तेरा विवाह देव विवाह की रीति से करने की नीयत है।"

रामसिंह—"तब उसे विबाह कहिये। देव विवाह न कहिये।"

तारासिंह—"देव विवाह क्या होता है ?"

रामसिंह—"देव विवाह देवताओं का विवाह है जो देवलोक में होता है। उसमें शारीरिक मिलाप की आवश्यकता नहीं रहती। देह नहीं मिलता, मन मिलता है। यह आध्यात्मिक विवाह कहलाता है। देवता शारीरिक संतान पैदा नहीं करते किन्तू मानसिक या आध्यात्मिक संतान पैदा करते हैं, जो केवल मन के संकल्प के रूप में उत्पन्न होती है। वह केवल संकल्प है। ब्रह्मा जी इसी सिद्धान्त के अनुसार सृष्टि की रचना करते हैं।"

तारासिंह की दिलचस्पी की भावना भड़की। उसने इस पर कभी सोचा नहीं था। लड़के ने नई बात कही। पूछ बैठा—"अब तुम मुझे इन विवाहों का विवरण अपनी समझ के अनुसार सुनादो।"

रामसिंह—"देव विबाह तो आप सुन चुके। गंधव विवाह में जाति भाइयों की उपस्थिति या साक्षी की आवश्यकता नहीं समझी जाती। "जोरू खाविंद राजी, क्या करेगा काजी; प्रायः राजे ऐसा विवाह कर लिया करते थे। चूंकि यह हानि का कारण हुआ इसलिए बुद्धिमानों ने इसे बन्द कर दिया। यद्यपि छिपे चोरी यह नित्यप्रति होता रहता है और इसके परिणाम दूषित सिद्ध हुए और होते रहते

हैं। उत्तम विवाह वह है जिसमें हर एक छोटे बड़े, पुरोहित, बिरादरी आदि सब सम्मिलित होते हैं और सब के सामने वर-कन्या परस्पर बचन बद्ध होकर पति पत्नी बनाये जाते हैं। इसी की रीति होनी चाहिए। यही अच्छा समझा जाता है यद्यपि अज्ञानता ने बचपन के विवाह के रूप में इसे बिगाड़ दिया। वह मध्यम विवाह हो गया। राक्षस विवाह जबरदस्ती है। बलात्कार है और सजा योग्य है। पशुविवाह–कुदरत के क्रियात्मक ढंग का विवाह है जो स्थायी और अस्थायी दोनों ही प्रकार का होता है। गाय बैल आदि अपने जोड़े से केवल भोग के समय जोश के साथ मिलते हैं और जोश के समाप्त होते ही फिर इनमें न कोई स्त्री है न पति है। यह सम्बन्ध क्षणिक है। इसके प्रतिकूल फाख्ता और कबूतर आदि हमेशा जोड़े के साथ रहते हैं। यह विवाह का स्थायी रूप है। स्वयंवर विवाह का सम्बन्ध केवल कन्या की इच्छा पर निर्भर होता है। वह जन समूह में जिसे चाहती है उसे अपने लिये वर चुन लेती है। अब उसका कहीं रिवाज नहीं है। यह कई प्रकार के विवाह होते हैं।"

तारासिंह—"तू इन बातों को मुझ से अधिक समझता है। मैं तेरा उत्तम विवाह करना चाहता हूं।"

रामसिंह—"तब फिर आप जल्दी क्यों करते हैं ? इसे मेरे ऊपर छोड़ दीजिये। जब मैं चाहूँगा, अपना विवाह कर लूंगा।'.

तारासिंह—"अब तू वयस्क होगया। समय तो आगया।"

रामसिंह—"मुझ में विवाह के रुझान का माद्दा अब तक पैदा नहीं हुआ। फिर कैसे विवाह करूं।"

तारासिंह—"वह समय कब आयेगा।"

रामसिंह—"जब रुझान की भावना उत्पन्न होगी। आप स्वयं ही मेरे आचरण को देख कर परिणाम निकाल सकते हैं।"

तारासिंह—"फिर यह मिरनालिनी हाथ से जाती रहेगी।"

रामसिंह—"मुझे मिरनालिनी या और किसी के साथ विवाह करने की इच्छा ही नहीं है। न मैंने उसे पसंद किया है। रेगिस्तान में निःसहाय दशा में पड़ी हुई थी, मुझे इस पर दया आई, इसे साथ ले आया। उसे गुरु के पास पहुंचा दिया जहाँ उसको आध्यात्मिक शिक्षा मिल रही है। आपने गलत परिणाम निकाला है।"

योधाबाई और तारासिंह दोनों की बोलती बन्द हो गई। कहते भी तो क्या कहते! समझ गये लड़के में अभी युवापन नहीं आया, यद्यपि साधारणतया लड़कों में यह दशा उसकी आयु पर आ जाती है। अतः चुप रहने के अतिरिक्त कर ही क्या सकते थे!

# तेईसवां प्रकरण

## बीमारी

मोहनी को चेचक के रोग ने धर दबाया। यह रोग कुछ ऐसे भयंकर रूप में पैदा हुआ कि लड़के, युवा और बूढ़े सब ही उसके प्रभाव में आगये और इनमें से अधिकतर मर जाते थे। मोहनी सख्त बीमार होगई। इलाज बहुतेरा किया गया। लाभ तनिक भी नहीं हुआ। सारे शरीर में चेचक के दाने निकल आये। बुखार जो चढ़ा, उतरने पर नहीं आया। वह प्रायः बेहोश पड़ी रहती थी। कभी कभी उसे त्रिदोष हो जाता था। वह ऊट पटांग बका करती थी।

सुजानसिंह बेचैन होगया। जालिमसिंह व्याकुल हुआ। समस्त कुटुम्बी हैरान रह गये।

जालिमसिंह ने सुजानसिंह से कहा—"बहू की दशा बिगड़ी हुई है। क्या अच्छा होता कि वह वैद्यराज आ जाते जिन्होंने तेरा इलाज किया था। तब तो यह बच जाती वरन् बचने की आशा नहीं है।

ऐसी लड़की बड़े भाग्य से मिलती है। यदि मर गई, तो बड़ा रंज होगा।"

सुजानसिंह—"पता नहीं वह कहाँ है। रामसिंह को ज्ञात है। उन्होंने ही भेजा था।"

जालिमसिंह—"तुरन्त आदमी भेजो। वह वैद्यराज को भेज दें। अन्यथा घर अंधेरा हुआ आता है। कौन जाने क्षण भर में क्या हो जाये।"

सुजानसिंह ने कलम दवात मंगाई और यह पत्र लिखा:—

"प्यारे भाई !

तुम्हारी बहिन बहुत बीमार है। बीमार ही नहीं है किन्तु प्रत्यक्ष में मृत्यु शैय्या पर लेटी हुई है। आशा टूट रही है। बुखार जोर का है। चेचक के दाने सारे शरीर पर फूट निकले हैं। हम सब खाट के पास बैठे हुये उसकी सांस गिन रहे हैं। कभी कभी वह तुम्हारा नाम लेती रहती है और मिरनालिनी मिरनालिनी करती रहती है। यह दोनों नाम उसकी जुबान पर रहते हैं। मिरनालिनी कौन है यह हम नहीं जानते। उसके साथ की कोई सहेली होगी।

यदि वैद्यराज आ जाते तो शायद यह बच जाती। इसका नया जन्म होता वरन् दो एक दिन में आपके पास शोक समाचार का पत्र पहुंचेगा। इससे अधिक लिखने की इच्छा और आवश्यकता नहीं।

तुम्हारा भाई
सुजान।"

पत्र लिफाफा में रक्खा गया। साड़िनी सवार दौड़ा गया। वह घंटों ही में रामसिंह के घर पहुंचा। सब शोकातुर हो गये। मिरनालिनी यशोदा के घर थी। रामसिंह को चैन कहाँ ! उसी समय मां बाप से आज्ञा लेकर अपनी तेज सांडिनी पर सवार हुआ। मोहनी की मां के घर पहुंचा। उसकी बीमारी की सूचना दी। मिरनालिनी और यशोदा दोनों तड़प गये।

समय कम था। मिरनालिनी ने यशोदा से आज्ञा लीं, मर्द वस्त्र पहिने। रामसिंह और वह दोनों सांडिनी पर बैठे। वह पगट भागी। सारवान को वहां ही छोड़ा और गिरते पड़ते हुये झौंके की तरह सुजानसिंह के घर पहुँचे।

वास्तव में वही हालत थी जो पत्र में लिखी गई थी। मोहनी बेदम और बेहोश पड़ी थी। वैद्यराज ने नब्ज देखी। हाथ पाँव ठण्डे हो गये थे। नब्ज का पता तक नहीं था।

वैद्यराज की जुबान से निकल गया—"हाय बहिन! क्या सच हमें वियोग का दुख देकर चली ही जायेगी। ऐसी आशा नहीं यह तेरे खेलने खाने के दिन थे। मैं मरते मरते तुझे बचा लूंगी।

अन्तिम शब्द पर किसी का ध्यान नहीं गया। सब शोक में थे तब वैद्यराज ने जालिमसिंह से कहा—"मुझे आपने शीघ्र ही सूचना क्यों नहीं दी?"

जालिमसिंह ने उत्तर दिया—"यह बहुत ही शीघ्र बीमार पड़ी आपका पता नहीं था। सुजानसिंह को आपकी याद आ गई। उ बुलवा भेजा।"

वैद्यराज—"खैर! अब आशा शेष नहीं है। मैं आखिरी उपाय करता हूं। बच गई तो बच गई वरना मृत्यु निश्चयात्मक दृष्टि इस घूर रही है। तुरन्त तेज और बारीक छुरा मंगाइये और फूल का कटोरा लाइये।"

कहने की देर थी। दोनों पेश किये गये। वैद्यराज ने अपने ह पंजे पर तीन गहरे चीरा लगाये। रक्त बहने लगा। कटोरा गया। मोहनी के मुंह को सड़ासी से खोलकर वह रक्त उसके ह के नीचे उतार दिया। और सब लोग इस विचित्र इलाज के प णाम के देखने के लिये संतोष के साथ इन्तजार करने लगे।

दस पन्द्रह मिनट हो गये। शरीर में गर्मी आई। मोहनी ने आं खोल दीं। आंखें चक्कर खाने लगीं। उसने वैद्यराज को और वैद्यरा ने उसको देखा। होश आ गया। वह हंसी—"बहिन! तू आ गई

मैं तो अब चली . देखना मुझे न भूलना। तुम्हारा बहिन हूँ। भूले भटके, भूल चूक क्षमा करना।"

वैद्यराज—"बहिन ! अब चिन्ता नहीं रही। तू बच गई। नाजुक समय टल गया। तू जावित रहेगी। मेरी दिल से दुआ है। दूधों न्हाये, पूतों फले। दुनियां में तू ही मेरी खुशी की उत्तराधिकारी है। तेरी जान मेरी जान है। मैं तेरे शरीर मैं जीवित रहूँगी।"

"मोहनी—"क्या यह सच है।

वैद्यराज—"हां. अक्षरसः सच है।"

मोहनी—"तूने क्या दवा दी जो मुझे होश आ गया ?"

वैद्यराज—"इसका पता फिर मिलेगा। अब तू बात न कर। सोजा और मेरी इच्छा को पूरी कर।"

उसने आँखें बन्द कर लीं। कमजोरी थी। रक्त की गर्मी ने जोर मारा। उसी समय नींद आ गई।

वैद्यराज ने सुजानसिंह से कहा—"मोहनी मेरी मुंह बोली बहन और उसकी मां मेरी धर्म की माता। रामसिंह मेरा धर्म का भाई है। देखना, जब तक मोहनी अच्छी न होले, तुम उसकी सेवा में रहना। तुम दोनों में प्रेम और सहानुभूति है और यही समय प्रेम और सहानुभूति जताने का है। यह दुनिया में सबसे बड़ा इलाज है। जिसे प्रेम मिल गया, वह अमर हो गया। तुम मेरे सामने प्रण करो कि आवश्यकता के सिवाय कभी मोहनी का साथ न छोड़ोगे।"

सुजानसिंह—"मैं प्रण करता हूँ।"

वैद्यराज—"सच्चा या झूंठा।"

सुजान—"सच्चा।"

वैद्यराज—"अच्छा है तुम राह पर आ गये। बचन पलटने की आदत गई। तुम अच्छे आदमी हो। ईश्वर तुम्हारा भला करे। यही मेरी प्रार्थना है।"

सुजानसिंह ने वैद्यराज को ध्यान से देखा। सोचने लगा—यह

कौन आदमी है जिसे मैं जानते हुए भी नहीं जानता हूँ और न जानते हुआ जानता हूं। कहीं देखा अवश्य है किन्तु याद नहीं आता कि कहाँ देखा है। उसने पूछा—"तुम्हारे साथ जान पहिचान भी है।"

वैद्यराज—"जान पहिचान ही क्यों प्रीति भी है।"

सुजान—"कहां ? कब ? कैसे ?"

वैद्यराज—"स्मरण शक्ति में घटनाओं के विवरण को सुरक्षित रखने का सामान कम रहता है। केवल योगी ही जन्म जन्मान्तरों की बातों को स्मरण रख सकते हैं किन्तु अंश रूप में ! कौन कहां किस लोक लोकान्तर में मिला है इसका किसे ख्याल रहता है। दुनियां स्वप्न का खेल है। एक बार देखा और बस ! अथवा एक बार देखा और दूसरी बार देखने की लालसा ! अथवा बार बार देखना और टस से मस नहीं किया। ऐसी बातें मैं पहिले भी तुम्हें सुना चुका हूँ।"

सुजानसिंह—"आपका अहसान है। उस बार मेरी जान बचाई। इस बार मेरी स्त्री की ! हम दोनों इस जीवन में आपके अहसान के भार से उऋण न होंगे।"

वैद्यराज—"अच्छी बात है। अब मैं अधिक बात नहीं कर सकता पंजे से शरीर का रक्त निकल गया। कमजोरी आ गई। अब थोड़ा आराम करूंगा।"

सुजानसिंह मोहनी के सिरहाने बैठ गया। वैद्यराज रामसिंह को साथ लिये हुए बरामदे में आया। गांवों में बरामदा ही बैठक का काम देता है। खाट बिछी थी। उस पर लेट गया। सब को वहां से हटा दिया। रामसिंह उसके साथ रहा।

वैद्यराज ने उससे कहा—"भाई ! तुम मेरे ईश्वर हो। तुम्हारी सहायता से गुरु का दर्शन मिल गया।"

यह तन दर्शन की बेलरी, गुरु अमृत की खान।
शीश दिये जो गुरु मिलै, तो भी सस्ता जान॥

रामसिंह—"इन बातों का अभिप्राय क्या है ?"

वैद्यराज—"अनुभव न होने से रक्त अधिक निकल गया। हाथ तर कपड़े से बंधा हुआ है किन्तु रक्त बन्द नहीं हुआ। अचेतनता आ रही है। दिल को थाम कर बात कर रहा हूँ।"

रामसिंह—"फिर ?"

वैद्यराज—"मैं सो रहता हूँ। उठा तो खैर ! और जो सोया ही पड़ा रहा तो तुम या कोई व्यक्ति मेरे शरीर को हाथ न लगाये। चूनर लाकर उढ़ा देना और सुजानसिंह से कहना, वह अपने हाथ से मेरा दग्ध कर्म करे। बस इतना ही कहना था। सबको मेरा नमस्कार पहुँचा देना। कागज पर कुछ लिख छोड़ा है वह सबको सुना देना।"

वैद्यराज ने कागज का पुलंदा उसे दिया।

रामसिंह ने कहा—"यह क्या व्यर्थ बातें हैं।"

कोई उत्तर नहीं मिला। सांस निकल गया। चन्द्रायण लग गया। आंखें गईं। रामसिंह ने ध्यान से देखा, पुकारा—"वैद्यराज ! वैद्यराज ! लेकिन वैद्यराज हों तब तो उत्तर दें। वह तो किसी और देश को चले गये। नाशवान चोला पड़े का पड़ा रह गया।"

# चौबीसवां प्रकरण

## मृत्यु

किसे मरना था और कौन मरा ! आये थे जीवन देने और प्राणों से हाथ धो बैठे ! क्या अनोखी बात है ! भरी हुई नदी में पानी का घड़ा भरने गया। पानी की बाढ़ आई। उसे बहा ले गई। लेने के देने पड़े ! किसी ने ऐसी बातें कहां सुनी हैं ! लेकिन दुनियां में प्रायः ऐसा ही होता है। शराब पीने के विरोध करने वाले क्रियात्मक रूप से उसका ध्यान या ख्याल करते रहने से स्वयं शराबी हो जाते हैं। यह सूक्ष्म अंग है। ईश्वर से जीवन मांगने जाते हैं और

यह जीवन उसी के लिये अर्पण हो जाता है। यह उज्वल अंग है। लेने वाले को देना पड़ता है। जो लेता ही लेता है वह कंजूस, मक्खी चूस और मोठा फूंस है। जो देता ही देता है वह दानी तो है किन्तु बुद्धि की दृष्टि से दकियानूस है। दोनों के दोनों अधूरे ! पूर्ण वह है जो लेता भी है और देता भी है। बदले का नियम दुनियां में इसी प्रकार एक पग के बाद दूसरा रखकर चलने पर काम करता है। दो और खाली न होगे, लो और भरते चले जाओगे। दोनों काम बराबर चालू रहें। तब तो जीवन वरन् मृत्यु ! है कोई ज्ञानी ध्यानी जो कुदरत के इस भेद को समझे !

वैद्यराज ने क्या लिया और क्या दिया ?

उसने दिये प्राण और लिया अहसान ! इस सवाल का यही उत्तर है।

रामसिंह ने आवाज दी। सब दौड़े चले आये। देखते क्या हैं कि वैद्यराज निर्जीव होगये हैं।आत्मा रूपी पक्षी तत्वों के बन्धन से पर खोलकर उड़ गया है और पिंजरा खाली पड़ा हुआ है। बोलता हुआ निकल गया। बोलने का यंत्र निकम्मा धरा है। कृष्ण बांसुरी बजा गये। गोपी अचल है। क्या हो गया ? जो होना था वही तो हुआ !

क्या क्या न बादशाहों का नाम व निशां मिटा।
हर एक अपने अहद का नौशेरवां मिटा।
मौसम गया बहार का दौरे खिजां मिटा।
जो फूल इस चमन में खिला बेगुमा मिटा।
दर पेश सब के वास्ते मंजिल अजीव है।
गाफिल बहोश बाश अजल अनकरीब है।

जो होने को था वही हुआ और वह अच्छा हुआ। कुदरत में जो काम होता है वह सदा अच्छा ही होता है। बावन तोले पाव रती ! जचा तुला ! कुदरत का कारीगर चतुर बनिया है। तराजू की डंडी बराबर और सीधी रखता है। हाथी और चींटी की जान बराबर रहती है। राजा और रंक बराबर होते हैं लेकिन इसे समझे कौन !

जालिमसिंह—"यह क्या हो गया।"

रामसिंह—"रक्त आवश्यकता से अधिक निकल गया। हृदय की धड़कन कमजोरी से बंद हो गई और यह मर गये।"

जालिमसिंह—"अफसोस ! मनुष्य नहीं था देवता था।"

रामसिंह—"अफसोस ! क्या था, किसी ने उसे नहीं समझा।"

चूनर मंगाई गई। लाश को ढक दिया। फिर अर्थी सजाई गई। वह मरघट पर पहुँचाई गई। चिता बनी। चन्दन, काफूर, घी, पीपल की लकड़ी आई। लाश को उस पर रक्खा गया। सुजानसिंह बुलाया गया। वह व्याकुल और दुखी ! यह क्या है !

रामसिंह ने उत्तर दिया—"यह वैद्यराज की लाश है। वसियत कर गये हैं। तुम इनका अन्तिम मृतक संस्कार करो।" उसने कहा—"इन्हें इसका अधिकार है और यह पूरा करना मेरा कर्त्तव्य है।"

उसने आग लगा दी। चिता जल उठी। कपड़े जले, बाल जले। लाश लकड़ियों के ढेर से ढकी हुई थी। बाहरी दृष्टाओं को वह दिखाई नहीं पड़ी। अन्दर ही अन्दर वह भस्म हो गई। लपटें ऊंची हुई आकाश की ओर जा रही थीं।

सुजानसिंह ने कहा—"यह वैद्यराज कौन थे। मैं इन्हें जानता हुआ नहीं जानता हूँ।" अग्नि ने हजारों लपटों रूपी जिभ्याओं से ऊपर की ओर संकेत किया। वह जब जिभ्या से कही साधारण बात को नहीं समझ सकता था तो अग्नि रूपी जिभ्या की बात को क्या समझ सकता था।"

अफसोस ! जीवन का यही परिणाम है।

कबीर क्यों है गर्व में, काल ने पकड़े केस।
क्या जानूं मारे कहां, क्या घर क्या परदेस॥
कबीर क्यों है गर्व में, मास लपेटा हाड़।
क्या जानूं कहां जरेगा, ऊसर और पहाड़॥
कबीर क्यों है गर्व में, दो दिन का व्यौहार।

क्या जानूं कहां सहेगा, काल कर्म की मार ॥
हाड़ जले ज्यों लाकड़ी, केस जले ज्यों घास ।
सब जग जलता देखकर, भये कबीर उदास ॥
कबीर मरेंगे मर जायेंगे, कोई न लेगा नाम ।
ऊसर जाय बसायेंगे, छोड़ बसंता गाम ॥

रोया कोई नहीं, क्योंकि जाने वाला अपने लिये आप आंसू बहा गया था। बेचैन कोई भी नहीं हुआ, क्योंकि मरने वाला पहले ही अपना रक्त गिरा गया था। हां, अफसोस सबको था।

यह तन पिंजरा मांस का, सांस का पक्षी बंद ।
उड़ा उड़ा उड़ उड़ गया, काटा द्वंद का फंद ॥
दस द्वारे का पींजरा, ता में पक्षी पौन ।
रहे अचम्भा बहुत है, गये अचम्भा कौन ॥
कबीर अपना काम कर, काम रहे निष्काम ।
इस रहनी से पाइये, इक दिन गुरु का धाम ॥
आये हैं सो जायेंगे, राजा रक फकीर ।
इक सिंहासन चढ़ चले, इक बधे जात जंजीर ॥

जले जलकर जल गये। अब कौन आंसू बहायेगा ! कौन रक्त पिलायेगा ! सारा गांव उस अनजान की लाश के साथ था : चिता पर भीड़ लगी थी। सब उसे पृथ्वी का भद्र पुरुष और आकाश का देवता समझते थे। न जान न पहिचान ! न मेल न मिलाप ! और सब प्रेमी ! यह रहस्य क्या है ! प्रेम ! प्रेम के सिवाय और कुछ नहीं। उसने सबके साथ प्रेम का व्यवहार तो नहीं किया था। यदि किया था तो सुजान, मोहनी और जालिमसिंह के साथ ! फिर सारी दुनियां क्यों उसके चारों ओर फिर रही थी ?

प्रेम सूर्य है। जहां चमका, सबका अंधेरा मिट गया। प्रेम मेह है। जब मेह बरसा सबको ठंडक मिल गई। प्रेम गुलाब का फूल है। एक जगह खिलता है और उसकी सुगंध दूर दूर तक पहुंच

जाती है। प्रेम ब्रह्म यज्ञ है। कहीं भी हो, उसका धुंआ आस पास के स्थानों को सुगंधित करता हुआ आकाश का रास्ता लेता है। प्रेम गंगा की धार है जो मिट्टी और वायु से मिलकर सबको शीतल कर देती है।

प्रेम भाव यक चाहिये, भेष अनेक बनाय।
चाहे घर में बास कर, चाहे बन में जाय॥
जोगी जंगम सेवड़ा, सन्यासी दरवेश।
बिना प्रेम पहुंचै नहीं, दुर्लभ सतगुरु देश॥
प्रेम पियाला जो पिये, शीश दक्षिणा देय।
लोभी शीश न दे सके, नाम प्रेम का लेय॥
कबीर प्याला प्रेम का, पीते बहुत रसाल।
इसका पीना कठिन है, मांगे शीश कलाल॥
कबीर प्याला प्रेम का, अन्तर लिया लगाय।
रोम रोम में बस गया, और नशा क्या खाय॥
प्रेम-प्रेम सब कोई कहे, प्रेम न जाने कोय।
एक दशा बरते सदा, प्रेम कहावे सोय॥

जेठ की पूर्णमासी थी। वैद्यराज ने परलोक का रास्ता लिया।

# पच्चीसवाँ प्रकरण

## रहस्य का हाल

तुम्हीं पर तब भी मरते थे, तुम्हीं पर अब भी मरते हैं।
मरे पीछे तुम्हीं पर मिट गये, यह समझ रखना॥

लाश को फूंक फांक कर सबने न्हाया धोया। अपने-अपने घर आये। सुजानसिंह ने क्रिया कर्म किया था। उसे घर में आने की धार्मिक रूप से मनाई थी। रामसिंह ने समझाया तुम अन्दर आया जाय करो। मोहनी को इस घटना की उस समय

बुद्धि पर पत्थर पड़ गये । मैं उसके पास आई । उसने आंखों से मुझ पर जादू कर दिया । और वह जादू गहरा प्रभाव कर गया । ईश्वर जाने उसकी आँख में कितना चुम्बकीय आकर्षण था, जिसने मुझे और भी उस पर लट्टू कर दिया । दोष तो मेरा था किन्तु वह भी निर्दोष नहीं था । मेरे आकर्षण को उसने प्रेम की बातों से भड़का दिया । दूसरे ही दिन मुझे सांडिनी पर बिठा कर भगा ले चला । राह में पता नहीं उसे क्या ख्याल आया । मुझसे कहने लगी मैं बचन भंग आदमी हूं । मेरा कोई विश्वास नहीं करता ।" मैं सब अवगुणों को सहन करती किन्तु प्रतिज्ञा भंग से मुझे स्वाभाविक चिढ़ है । मैं सभल गई । जादू उतर गया । मैंने कहा 'नीचे उतार दें, । उसने उतार दिया और चला गया । मैं न उसके नाम व निशान से परिचित थी न उसने बताया था । निर्जन रेगिस्तान ! व्याकुल और चिन्तित ! मैं सोचने लगी अब जिसे एक बार दिल दिया, दूसरे को क्या दूं ! वह बुरा सही ! मैं उसे बुरे से भला बनाकर छोड़ूंगी और उसी की सेवा, श्रम और संगत का दम भरूंगी । यह विचार दृढ़ हो गया और मैं उसी में विलीन ही गई । मेरा विचार सुनकर दूसरे को दुख होगा लेकिन मुझे दुख नहीं था ।"

सुजानसिंह की आंखों में पानी भर आया ।

रामसिंह ने फिर पढ़ना शुरू किया । थोड़ी देर पश्चात् एक हमदर्द और नेक दिल देवता मेरी सहायता के लिये रेगिस्तान में प्रगट हुआ । उसका नाम रामसिंह है । वह मुझे अपनी चची के घर लाया । चची ने धर्म की बेटी बनाया । उसकी लड़की मोहनी मामा के घर थी । जब वह आई, मेरी बहन हो गई । इसका प्रेम मेरे हृदय के आकर्षण का केन्द्र बन गया । उसने एक दिन बात-बात में कह दिया—"मेरे साथ रहो, चाहे मेरे पति के साथ विवाह कर लो, लेकिन साथ रहो ।" मैं हंसती रही । मोहनी

कहा करती थी, जो स्त्री मेरे मंगेतर को देखती है मोहित हो जाती है।" मुझे क्या मालुम वह कौन है। अन्त में पूछ-ताछ करते हुये पता लगा कि उसका नाम सुजान है। मेरे मन में ख्याल आया कि कहीं यही व्यक्ति मेरा भगाने वाला न हो। यह शंका ही शंका थी। इसी समय में रामसिंह मेरे पास आया और मुझे अपने घर ले गया। उसके मां बाप ने समझा कि अपनी पसन्द की स्त्री लाया है यद्यपि न मुझे इसका ख्याल था न उसे। बात चीत के क्रम में दोनों के मन मिले लेकिन बहिन भाई के पवित्र प्रेम के रूप में! रामसिंह स्वाभाविक रूप से साधु है। वह दुनियां का आदमी नहीं है और ईश्वर ने मुझे साधुनी बना दिया है। वह मुझे अपने गुरु स्वामी स्वरूपानन्द के पास ले गया। उनसे योग विद्या सीखी और मैं किसी अंश तक अभ्यासी हो गई।"

रामसिंह थोड़ी देर ठहरा और फिर पढ़ने लगा।

"मोहनी का विवाह जेठ में निश्चित हुआ और उसी महीने में सुजानसिंह बीमार पड़ा। मोहनी का पत्र आया। मैं वैद्यराज के भेष में सुजानसिंह को देखने गई। इसके दो उद्देश्य थे एक पता लगाना कि सुजान कौन है और उसका इलाज.....।"

सुजान मन को वश में करते-करते बेहोश हो गया और ढारें मार कर रो पड़ा। रामसिंह ने समझा बुझाकर चुप किया और फिर पढ़ना शुरू किया।

"मैं गई, देखाभाला समझ गई कि यह मेरा शिकारी है चित्त में उसका प्रेम था। नेत्रों से आँसू निकल पड़े। मेरे अन्त और अनुभव में आया कि जब आँखों में प्रेम का प्रभाव है तो मेरे आँसू दवा का काम कर जायेंगे। उसे ही पिलाया। और दो बार के प्रयोग से वह अच्छा हो गया। और मैं अपने को प्रगट किये बिना ही चली आई। सुजानसिंह के आग्रह पर प्रतिज्ञा कर आई कि विवाह के अवसर पर मिलूंगी।"

रामसिंह फिर ठहरा और पढ़ना आरम्भ किया।

"मोहनी ने पहिले तो यह कहा था कि मैं उसके पति के घर व्याहता बनकर रहूं और पीछे एक अवसर पर कहा सौतिन बना कर रखना पसन्द नहीं है। और बात भी सच्ची है। मैंने इरादा कर लिया कि यदि सुजान अच्छा भी हो गया तो मैं व्यवहारिक दृष्टि से उसके साथ विवाह न करूँगी। अवसर मिला तो सेविका की तरह रहूँगी। मोहनी के लड़के को खिलाऊँगी। उसकी संतान मेरी संतान होगी और सुजानसिंह के साथ मेरा विवाह आकाश पर होगा।

विवाह का दिन आ गया। मैं मोहनी की माँ के घर गई। भावरों के फेरे के समय सुजानसिंह के सामने प्रतिज्ञा के अनुसार उपस्थित हुई। पता नहीं उसने मुझे देखा या नहीं, पहिचाना या नहीं पहिचाना। वैद्यराज के भेष में उसे कुछ तो धोका हुआ था लेकिन थोड़ा और यह अच्छा था।

मोहनी का विवाह हो गया। वह घर गई। आज सुनती हूँ वह मरणासन्न है। ऐ ईश्वर! मुझे मृत्यु आ जाये। मेरी बहिन न मरे। वह मेरे पति की स्त्री है और उसकी प्यारी है। मैं दोनों को प्यार करती हूँ। अपने और मोहनी में नाम को भी अन्तर नहीं देखती। यदि सुजान उसे प्रेम करता है तो मैं समझती हूं वह मुझको ही प्यार कर रहा है। किसी को प्रेम तो करता है। यह प्रेम ही उसे भला आदमी बनायेगा।

"जाने को तो जाऊंगी। ज्ञात नहीं क्या हो! मोहनी यदि जीवित मिली तो अपना रक्त पिलाकर उसे जीवित करूंगी। रक्त निकल जाने पर यदि मैं मर गई तो अच्छा है। शायद इन कागजों के विषय को पूरा करने का अवसर मिले या न मिले। मोहनी मर गई तो मैं भी मर जाऊंगी और यदि मेरे रक्त पीने से जीवित रह गई और मैं मर गई तो हार्दिक इच्छा पूरी हो

गयी । सुजान का नाम लेते हुये मर मिटूंगी । शारीरिक दृ
से जैसी मां के पेट से आई थी वैसे ही विदा हो जाऊंगी । लेकिन
आकाश पर चढ़कर सुजान के साथ विवाह करूंगी । रामसिंह से
यह प्रार्थना करूंगी कि यदि मोहनी को रक्त पिलाकर मैं यदि मर
जाऊं तो मेरी समाधि बनवा कर उस पर यह शेर खुदवा देना—

तुम्हीं पर तब भी मरते थे, तुम्हीं पर अब भी मरते हैं ।
मरे पीछे तुम्हीं पर मर मिटेंगे, यह समझ रखना ।।

मेरा असली नाम मोती बाई है । मिरनालिनी मैंने स्वयं धोका देने की नीयत से रक्खा था ताकि कोई पता न पाये ।

रामसिंह, जालिमसिंह सुनकर हैरान हो गये । सुजानसिंह की आंखों से कई मिनट तक अश्रु धारा बहती रही ।

जालिमसिंह ने बेटे को समझाया—"जो होना था हो चुका । रोने से कोई लाभ नहीं । मोती बाई मोहनी में जीवित है । उसी का नाम लो । उसे इन घटनाओं की सूचना न होने पावे ।"

## छब्बीसवां प्रकरण

### परिपूरक

मोहनी स्वस्थ हो गई । सुजान उसके साथ प्रेम से रहता है वह अब दूसरे ढंग का आदमी है । मोहनी के पेट से तीन लड़के और तीन लड़कियां पैदा हुई । लड़कों के नाम मोतीसिंह, मिरनालसिंह और जोगीसिंह था । लड़कियों के नाम मोती बाई मिरनालिनी बाई और जोगी बाई है । तीनों उसे आंसू और रक्त पिलाने वाली राजपूतिनी के नाम थे ।

गांव के निकट एक पक्की समाधि बनी हुई है, और एक पत्थर पर यह शेर खुदा हुआ है—

तुम्हीं पर तब भी मरते थे, तुम्हीं पर अब भी मरते हैं ।
मरे पीछे तुम्हीं पर मर मिटेंगे यह समझ लेना ।।

वैद्यराज और मिरनालिना की कहानी को सब ग्रामवासी जानते हैं। जब समाधि की ओर से जाते हैं उसकी कहानी अवश्य कहते सुनते और सुनाते हैं।

रामसिंह ने विवाह नहीं किया। तारासिंह और योधा बाई लालसा अपने साथ ले गये। उसने गुरु की सेवा को ही सब कुछ समझ लिया।

मिरनालसिंह तारासिंह की सम्पति का, जोगीसिंह यशोदा की जमीदारी का और मोतीसिंह जालिमसिंह की जायदाद के उत्तराधिकारी विख्यात कर दिये गये।

कजदार मोती

समाप्त